

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

जम्मू विश्वविद्यालय

University of Jammu

जम्मू

Jammu



पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम. ए. हिन्दी

M.A. (HINDI)

SESSION : 2020 Onwards

पाठ्यक्रम संख्या 303
COURSE CODE HIN 303

Dr. Anju Thappa
Co-ordinator

सत्र-तीसरा
SEMESTER-III

Hindi Nibhand

हिन्दी निबन्ध

आलेख संख्या – 1 से 12

LESSON NO. 1- 12

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू -180006 के पास सुरक्षित है।

*All copyright privileges of the Material vest with the
Directorate of Distance Education University of Jammu, Jammu - 180 006*

COURSE CODE – HIN 303

Course Contributors

- **Prof. Parmeshwari Sharma**
*Professor, Department of Hindi,
University of Jammu,
Jammu* Lesson No. 5 to 8

- **Dr. Rajni Bala**
*Associate Professor
Department of Hindi
University of Jammu,
Jammu.* Lesson No. 1 to 4

- **Prof. Pushp Pal Singh**
*Retd. Professor
Punjabi University,
Patiala* Lesson No. 9 to 12

Proof Reading

- **Mrs. Neelam Kumari**
Ph.D. Scholar, NET, SET

© Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu, 2020

All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu.

The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility

Printed by : Jandiyal Printing Press, Canal Road, Jammu / 2020 / 500

Course Code : Hin-303

Title : Hindi Nibandh

Credits : 5

Maximum Marks : 100

Duration of Examination : 3 Hrs.

a) Internal = 20

b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in Dec. 2019, 2020 & 2021

पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकें

1. चिन्तामणि भाग-1 : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
(लज्जा और ग्लानि, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था)
2. अशोक के फूल-हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।
(अशोक के फूल, वसन्त आ गया है, आपने मेरी रचना पढ़ी)
3. रस आखेटक - कुबेरनाथ राय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली ।
(रस आखेटक, हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध, कवि तेरा भोर आ गया)

पाठ्यक्रम का विवरण :

इकाई -1

- शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएं
- शुक्ल के निबन्धों की भाषा शैली
- शुक्ल के निबन्ध भाव प्रधान या बुद्धि प्रधान ।
- पाठ्यक्रम में निर्धारित शुक्ल के निबन्धों पर प्रश्न

इकाई - 2

- हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताएं ।
- हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की भाषा शैली ।
- हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में भारतीय संस्कृति ।

- पाठ्यक्रम में निर्धारित हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों पर प्रश्न ।
- इकाई - 3
- निबन्ध के विकास में कुबेरनाथराय का स्थान ।
 - कुबेरनाथ राय के निबन्धों की विशेषताएं ।
 - कुबेरनाथ राय के निबन्धों की भाषा शैली ।
 - पाठ्यक्रम में निर्धारित कुबेरनाथ राय के निबन्धों पर प्रश्न ।

प्रश्न पत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा :

- प्रत्येक पुस्तक से शत प्रतिशत विकल्प सहित एक एक व्याख्या - $7 \times 3 = 21$
- प्रत्येक इकाई से शत प्रतिशत विकल्प सहित एक एक दीर्घ उत्तरापेक्षी - $10 \times 3 = 30$
- प्रत्येक इकाई से शत प्रतिशत विकल्प सहित एक एक लघु उत्तरापेक्षी - $5 \times 3 = 15$
- प्रत्येक इकाई से शत प्रतिशत विकल्प सहित एक एक अति लघु उत्तरापेक्षी - $3 \times 3 = 9$
- विकल्प रहित पूरे पाठ्यक्रम पर आधारित पाँच वस्तुनिष्ठ प्रश्न - $1 \times 5 = 5$

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएं	4
2.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध भाव प्रधान हैं अथवा बुद्धि प्रधान	18
3.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों की भाषा शैली	31
4.	पाठ्यक्रम में निर्धारित शुक्ल के निबन्धों पर कथ्यगत मूल्यांकन	45
5.	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताएं	54
6.	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में व्यक्त भारतीय संस्कृति	68
7.	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की भाषा शैली	77
8.	पाठ्यक्रम में निर्धारित निबन्धों पर प्रश्न	88
9.	निबंध साहित्य के विकास में कुबेरनाथ राय का स्थान	101
10.	कुबेरनाथ राय के निबन्धों की विशेषताएं	108
11.	कुबेरनाथ राय के निबन्धों की भाषा शैली	117
12.	पाठ्यक्रम में निर्धारित निबन्धों पर प्रश्न	125

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएं

- 1.0 रुपरेखा
 - 1.1 उद्देश्य
 - 1.2 प्रस्तावना
 - 1.3 निबन्ध : अर्थ एवं स्वरूप
 - 1.4 आचार्य शुक्ल के अनुसार निबन्ध की विशेषताएं
 - 1.5 निबन्ध की सामान्य विशेषताएँ
 - 1.6 आचार्य शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएं
 - 1.7 सारांश
 - 1.8 कठिन शब्द
 - 1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
 - 1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें
- 1.1 उद्देश्य :
- निबन्ध के अर्थ एवं स्वरूप के विषय में जान सकेंगे ।
 - निबन्ध की सामान्य विशेषताओं के विषय में जान सकेंगे ।
 - आचार्य शुक्ल के निबन्धों की विशेषताओं के साथ निबन्ध के सन्दर्भ में शुक्ल का दृष्टिकोण समझ सकेंगे ।

1.2 प्रस्तावना :

निबन्ध एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें निबंधकार अपने व्यक्तित्व या निजीपन को केन्द्र में रखकर विषय का प्रतिपादन करता है। लेखक के व्यक्तित्व का यह एक अभिन्न अंग है, इसलिए वैचारिकता और आत्म प्रकाशन का एक प्रभावशाली तथा रोचक माध्यम के रूप में निबन्ध को स्वीकार किया गया है। निबन्ध में काव्य की सी रमणीयता, भावुकता एवं समरसता होती है। कहानी का सा विनोदपूर्ण रस होता है, नाटक की सी गतिशीलता, संवादात्मकता एवं प्रभावविन्विति होती है। संस्मरण जैसी विवरणात्मकता आर्कितका एवं विजता होती है। रेखाचित्र की सी चित्रात्मकता होती है और व्याख्या का प्रभाव, वक्तृत्व की मर्यादा, तर्क का बल और पारस्परिक वार्तालाप का आनन्द भी विहित रहता है। फलस्वरूप निबन्ध को शृंगार कह सकते हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य की गद्य विधाओं में निबन्ध प्रमुख साहित्यिक विधा है। निबन्ध शब्द लैटिन भाषा के 'एर्नायर', फ्रेंच के 'एसाइ' और अंग्रेजी के 'एसे' का पर्यायवाची है। निबन्ध का शाब्दिक अर्थ है 'बाँधना' अर्थात् किसी को बाँधना। प्राचीन काल में जब मुद्रण कला का आविष्कार नहीं हुआ था। अरण्यक ग्रन्थ लिखते हुए अथवा भोजपत्रों पर लिखे काव्य-महाकाव्य को आचार्य एक सूत्र या धागे से बाँध देते थे इस क्रिया को निबन्ध कहा जाता था। कालान्तर में यह 'निबन्ध' ही निबन्ध हो गया और इसका अर्थ हुआ किसी एक विषय से सम्बन्धित सामग्री को एक स्थान पर संग्रहित कर देना चूंकि निबन्ध एक विषय का सर्वांग निरूपण करता है। इस प्रकार आधुनिक युग में निबन्ध उस गद्य रचना के लिए रूढ़ हो गया जिसमें विचारों या विषय का तारतम्यपूर्ण विवेचन हो।

1.3 निबन्ध : अर्थ एवं स्वरूप

निबन्ध सम्बन्धी भारतीय और पश्चिमी धारणाएँ निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व स्वीकार करती हैं। इसमें निबंधकार के निजी विचार, विशिष्ट भाव और निजी शैली की विशिष्टता रहती है। पाश्चात्य विद्वान मौन्तेन के अनुसार, निबन्ध वह है जिसमें वैयक्तिक विचारों या अनुभूतियों को कलात्मक सूत्र में पिरो देने का प्रयत्न किया जाए। इस परिभाषा के अनुसार निबन्ध व्यक्तिगत चिन्तन की कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रयत्न है। व्यक्तिगत चिन्तन का अर्थ है कि निबन्धकार का उद्देश्य किसी विषय पर दूसरों के विचारों और अनुभवों का संग्रह नहीं होता बल्कि वह अपने विचारों, अनुभवों, अनुभूतियों, कल्पनाओं, स्मृतियों आदि को कलात्मक और चित्रात्मक ढंग से स्पष्ट और सीधे रूप में प्रस्तुत करता है। भारतीय आचार्यों-विद्वानों ने भी निबन्ध सम्बन्धी विचार व्यक्त करते हुए उसे परिभाषित करने की कोशिश की है। बाबू श्याम सुन्दर दास के अनुसार, 'निबन्ध उस लेख को कहना चाहिए जिसमें किसी गहन विषय पर विस्तारपूर्वक और पांडित्यपूर्वक विचार किया गया हो।'

शुक्ल जी ने निबन्ध को व्यवस्थित और मर्यादित विचार प्रधान गद्य रचना माना है जिसमें शैली की विशिष्टता और लेखक के निजी चिन्तन और अनुभवों की विशेषता के कारण व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा भी रहती है। निबन्ध के संगठन और व्यवस्थित रूप पर बल देते हुए शुक्ल जी 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में कहते हैं, 'आधुनिक पाश्चात्य लेखकों के अनुसार निबन्ध उसी को कहना

चाहिए जिसमें व्यक्तिगत विशेषता हो। बात तो ठीक है यदि ठीक तरह से समझी जाए। व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की शृंखला रखी ही नहीं जाए या जानबूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाए, भावों की विचित्रता दिखाने के लिए ऐसी अर्थ योजना की जाए जो उनकी अनुभूति के प्रकृत या लोक सामान्य स्वरूप से कोई सम्बन्ध ही न रखे अथवा भाषा में सरकस वालों की सी कसरतें या हठयोगियों के से आसन कराए जाएं जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवाय और कुछ न हो।' जयनाथ नलिन 'हिन्दी निबन्धकार' में निबन्ध की परिभाषा देते हैं, 'निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्चित अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।' बाबू गुलाबराय ने निबन्ध की विशेषताओं का समाहार करते हुए 'काव्य के रूप' में निबन्ध की अधिक व्यापक परिभाषा दी है, 'निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।'

कुछ विचारकों ने निबन्ध को 'गम्प', 'बातचीत' आदि कहा है किन्तु कुल मिलाकर निबन्ध एक गम्भीर विधा है। पश्चिमी विद्वानों जैसे डब्ल्यू ई. विलियम्स ने कहा है, 'अंग्रेजी निबन्ध एक गम्भीर साहित्यिक विधा है। निबन्धकार चाहे सामाजिक व्यवहार पर लिख रहा हो, या किसी पुस्तक पर, विज्ञान पर लिख रहा हो या राजनीति पर, हर हालत में उसका उद्देश्य पाठक का मनोरंजन मात्र करना नहीं होता, अपितु उसे संस्कारित करना होता है। हिन्दी के निबन्धकार भी निबन्ध की सोद्देश्यता से जुड़े हुए हैं। भारतेन्दु, रामविलास शर्मा से आगे डॉ. नगेन्द्र तक की परम्परा से यही प्रमाणित होता है कि हिन्दी निबन्धों का उद्देश्य मनोरंजन नहीं, समाज को संस्कारित और मनुष्य को उदात्त बनाना है। इन परिभाषाओं एवं स्वरूप निरूपण से निबन्ध की सामान्य विशेषताएं इंगित की जा सकती हैं:—

- क) निबन्ध एक गद्य रचना है।
- ख) यह एक छोटे आकार की पूर्ण रचना है।
- ग) किसी विषय का क्रमबद्ध, संगठित, तारतम्यपूर्ण विधान निबन्ध में होता है।
- घ) इसमें निबन्धकार के व्यक्तित्व का अंकन, उसके निजी दृष्टिकोण, निजी विचार शृंखला, निजी भाषा और अनुभूतियों के रूप में बिम्बित होता है।
- ङ) निबन्ध सर्वाधिक विचारोत्तेजक एवं बुद्धि प्रधान रचना है
- च) शैली की रोचकता निबन्ध का अनिवार्य और महत्वपूर्ण अंग है।

इन सभी विशेषताओं का समाहार करते हुए डॉ. कृष्णदेव झारी निबन्ध को इस रूप में परिभाषित करते हैं, 'निबन्ध किसी एक विषय पर ऐसी नियमित सीमित आकार की किन्तु सुगठित स्वतः पूर्ण गद्य रचना है जिसमें लेखक के निजी विचारों-भावों की बुद्धि-प्रेरक योजना और सरल प्रभावी निजी शैली के कारण व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा रहती है।'

1.4 आचार्य शुक्ल के अनुसार निबन्ध की विशेषताएँ

शुक्ल जी निबन्ध को साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं, 'यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों में ही सबसे अधिक सम्भव होता है। उनकी दृष्टि में शैली की बात तो बाद में आती है पहले भाषा की शुद्धता और उसका समीचीन होना जरूरी है। 'शुक्ल के अनुसार 'वाक्य रचना की व्यवस्था, भाषा की शुद्धता और प्रयोगों की समीचीनता सर्वत्र आवश्यक है। जब तक ये बातें सध न जाएं तब तक लिखने का अधिकार ही न समझना चाहिए।' शुक्ल ने निबन्ध के लक्षण बताते हुए स्पष्ट किया कि कविता आदि निबन्धेतर साहित्य-रूपों में कल्पना-प्रसूत वस्तु की प्रधानता होती है और निबन्ध में विचार-प्रसूत प्रधान होती है लेकिन कल्पना-प्रसूत वस्तु गौण होती है इसके अतिरिक्त निबन्ध अर्थ प्रधान, व्यक्तिगत वाग्वैचित्र्य अर्थ के साथ मिला जुला होता है और हृदयगत भाव एवं प्रवृत्तियाँ उसमें झलकती हैं।

निबन्ध में लेखक के व्यक्तित्व को लेकर शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं, 'संसार की हर एक बात और सब बातों से सम्बद्ध है। अपने-अपने मानसिक संघटन के अनुसार किसी का मन किसी सम्बन्ध सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। ये सम्बन्ध - सूत्र एक दूसरे से नये हुए, पत्तों के भीतर की नसों के समान, चारों ओर एक जाल के रूप में फैले हैं। तत्वचिन्तक या दार्शनिक केवल अपने व्यापक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए उपयोगी कुछ सम्बन्ध सूत्रों को पकड़कर किसी ओर सीधा चलता है और बीच के ब्यौरों में कहीं नहीं फँसता। पर निबन्ध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छन्द गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता चलता है। यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है।' एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखना ही व्यक्तिगत विशेषता है।

शुक्ल ने निबन्धों के विषय-विस्तार की कोई सीमा निर्धारित नहीं की। निबन्ध 'कुछ नहीं' अथवा 'शून्य' से लेकर विश्व की अनन्त छवि में आने वाली जितनी वस्तुएँ, क्रियाएँ, भाव हैं उन सब पर लिखे जा सकते हैं। निबन्ध चींटी से लेकर हाथी तक, रेत के कण से लेकर पर्वत तक, पानी की बूँद से लेकर सागर तक, 'न कुछ' में से सर्वज्ञ तक अर्थात् लेखक की कल्पना में जितने विषय आ सकते हैं, वे सभी निबन्ध के विषय हो सकते हैं। शुक्ल की दृष्टि में मुख्य रूप से निबन्धों की तीन कोटियाँ हैं - विचारात्मक, भावात्मक और वर्णनात्मक निबन्ध।

विचारात्मक निबन्धों में शुक्ल के अनुसार यह प्रयत्न होना चाहिए कि निबन्धकार के विचार और सिद्धान्त पाठकों के भी बन जाएँ। अतः जरूरी है कि सभी बातें बड़ी स्पष्टता और क्रमबद्धता के साथ निबन्ध में रखी जाएँ। विचार शृंखला उखड़ी हुई नहीं हो और मुख्य बल विचारों के स्पष्टीकरण को लेकर होना चाहिए। इनमें भाषागत सफाई और सावधानी की जरूरत होती है क्योंकि अतिरिक्त शब्द और वाक्य प्रयोग विचारों को ढक देते हैं। इन निबन्धों में भाषागत चमत्कार,

अलंकरण की गुंजाइश नहीं होती। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों पर विचार करते हुए उन्होंने स्थापना की, शुद्ध विचारात्मक निबन्धों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है, 'जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर कसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार-खण्ड के लिए हों।'

भावात्मक कोटि के निबन्धों से शुक्ल जी का आशय 'भाव' या 'मनोविकार' सम्बन्धी निबन्धों से नहीं बल्कि भावनाप्रधान शैली में लिखे गए निबन्धों से है। इस प्रकार के निबन्धों में निबन्धकार प्रेम, आह्लाद, हर्ष, करुणा, क्रोध, विस्मय अथवा अन्य प्रकार के भावों को अभिव्यक्त करता है। इस श्रेणी के निबन्धों की भाषा विचारात्मक निबन्धों से भिन्न होती है क्योंकि भावों की प्रबलता के कारण कहीं-कहीं भाषा में असम्बद्धता, विशृंखलता और तीव्रता का आवेग आ जाता है। अलंकार और चमत्कार का अवसर भी बना रहता है। अतिशयोक्ति और अत्युक्ति की सम्भावना होती है। शुक्ल के अनुसार कहें तो वेदना की व्यंजना के अवसर पर अनन्त ज्वाला में जलने, पहाड़ के नीचे पिसने आदि की बातें कही जा सकती हैं।

वर्णनात्मक निबन्धों के विषय में शुक्ल जी के अनुसार निबन्धकार के दो उद्देश्य होते हैं— पहला, वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में पूरी जानकारी देना। दूसरा, वर्ण्य विषय के प्रति पाठकों में कौतुहल, विस्मय, प्रेम, करुणा, भय आदि भाव जगाना। मनोरंजन के साथ जब विषय के प्रति भाव भी जगाया जा सके तभी वह निबन्ध साहित्यिक कोटि में आएगा। वर्णनात्मक निबन्धों के वाक्य अपेक्षाकृत छोटे, भाषा सरल एवं सुबोध होती है। शब्दों की सजावट तथा अलंकार प्रयोग का पर्याप्त अवसर रहता है। भाषा भावानुगामिनी होती है।

कथात्मक निबन्धों के विषय में शुक्ल जी का कहना है कि वे किसी उपाख्यान, वृत्तान्त अथवा घटना को लेकर चलते हैं। विचारात्मक निबन्धों की भांति उनमें सुसम्बद्धता ज़रूरी है। कथात्मक निबन्धों में घटनाओं को एक-दूसरे के आगे-पीछे इस क्रम में रखना पड़ता है कि उलझन न हो और इस बात पर भी ध्यान देना होता है कि घटनाओं को जानने की पाठक में बराबर ललक और उत्सुकता बनी रहे। इन निबन्धों की भाषा सरल रखनी पड़ती है क्योंकि भावों की व्यंजना यहाँ लक्ष्य नहीं होती। इनके अतिरिक्त निबन्धों की एक कोटि और बनाई जा सकती है, वह है व्यंग्यात्मक निबन्ध।

व्यंग्यात्मक निबन्धकार अपने समय और परिवेश की विभिन्न विरूपताओं, विसंगतियों को निबन्ध का विषय बनाता है। उपहास और क्रोध इन निबन्धों के स्थायी भाव हैं। उत्साह से भी इनका जुड़ाव है। करुणा को हम प्रेरणा अथवा बीज रूप मान सकते हैं। इनकी भाषा असंगतियों और भावों के अनुसार कभी सीधी, कभी वक्र, कभी चुटीली होती है। आवेगमय प्रवाह और ऊँची-नीची तरंगमयी गतियाँ यहाँ दिखाई पड़ती हैं। लक्षणा और व्यंजना अपने उत्कर्ष रूप को यहाँ प्राप्त करती हैं।

कथात्मक और घटनाप्रधान निबन्ध, निबन्ध जगत का अनिवार्य अंग कदापि नहीं हैं। निबन्ध स्वाभाविक रूप से गैर-कथात्मक लेकिन साहित्यिक रूप है। केवल घटना अथवा यात्रा का वर्णन

मात्र से कोई लेख निबन्ध नहीं हो जाता लेकिन विवरण के साथ चित्रांकन पद्धति, उसके कारण, विश्लेषण, चिन्तन के माध्यम से निबन्धकार के व्यक्तित्व के आन्तरिक तत्त्वों से जुड़कर वह गद्य रचना एक निबन्ध का रूप ले लेगी। निबन्ध एक ऐसा गैर-कथात्मक साहित्यिक रूप है जहाँ लेखक और पाठक के बीच की दूरी सबसे कम होती है। यही कारण है कि निबन्ध, निबन्धकार के व्यक्तित्व का दर्पण होता है। इन सभी कोटियों के साथ निबन्ध को किसी वर्ग तक सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि इनका स्वरूप लेखकीय व्यक्तित्व पर निर्भर करता है और व्यक्तित्व सभी का अलग-अलग होता है।

1.5 निबन्ध की सामान्य विशेषताएँ

एक विषय पर केन्द्रित होना निबन्ध की अनिवार्य शर्त है। ललित निबन्धकार कुबेरनाथ राय के अनुसार निबन्ध शिव के नदिया की भांति है जो पूरे कैलाश पर चक्कर लगाने के बावजूद शिव के पास ही लौटता है। इसी प्रकार निबन्धकार किसी एक विषय – सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक, चरित्रात्मक, भावात्मक, घटनात्मक आदि पर अपनी लेखनी चलाता है किन्तु एक समय में विषय क्षेत्र एक ही रहता है। दूसरे वह विषय की परिधि में आने वाली बातों, तथ्यों को छूता है किन्तु बराबर (मूल वर्ण्य विषय) पर अपनी पकड़ बनाए रखता है। विषय का विस्तार निबन्ध के स्वरूप अनुसार होना चाहिए अर्थात् न तो प्रबन्ध जितना बड़ा और न किसी पुस्तक की भूमिका जितना छोटा हो।

निजी दृष्टिकोण निबन्ध का मूलाधार अर्थात् मेरुदण्ड है। इसका अभिप्राय है विचार, भावानुभूतियों, भाषा के प्रत्येक स्तर पर वैयक्तिक विचार एवं दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना। सम्पूर्ण निबन्ध में निबन्धकार का व्यक्तित्व, अपना विचार प्रकट होना चाहिए। इस विशेषता के कारण विचार और बुद्धि तत्त्व निबन्धों का सामान्य तत्त्व बन जाते हैं। कविता यदि भावों का विषय है तो निबन्ध विचार और बुद्धि पर आधारित है। विचारों के साथ मौलिकता का प्रश्न जुड़ा हुआ है। विचार कहीं से सुने-सुनाए नहीं होने चाहिए बल्कि विचारों के साथ अर्थ संयोजन ज़रूरी है। निबन्धकार अपने चिन्तन-मनन से मौलिक विचारों की उद्भावना करते हुए पाठक की बुद्धि के कपाट भी खोलता चले। स्थायी महत्त्व की समस्याओं को लेकर उदात्त विचारों का प्रतिपादन होना चाहिए। विचार तत्त्व के साथ भाव तत्त्व निबन्ध का अनिवार्य अंग है। भाव से अभिप्राय है निबन्धकार वैयक्तिक रुचि-अरुचि, जीवन-जगत के प्रति अपनी रागात्मक प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करते हुए पाठक में भी संवेदना और भावों का प्रसार करे और पाठक-मन उदात्त भावों का आनन्द ले सकें। उदात्त भावों की रसानुभूति निबन्ध का अनिवार्य गुण है क्योंकि इससे सरसता आती है।

निबन्ध की एक निश्चित रूपरेखा होती है। निबन्ध के स्पष्टतः तीन भाग प्रस्तावना अथवा भूमिका, विषय प्रतिपादन और उपसंहार अथवा निष्कर्ष होते हैं। प्रस्तावना अर्थात् भूमिका का आयोजन निबन्ध के प्रारम्भिक एक दो अनुच्छेदों में होता है। विषय के साथ जुड़ाव और आकर्षण भूमिका को महत्त्वपूर्ण बनाता है। इसके पश्चात् छोटे-छोटे अनुच्छेदों में विषय-प्रतिपादन किया

जाता है। इसके अन्तर्गत वर्ण्य विषय सम्बन्धी सभी महत्त्वपूर्ण बातें, आवश्यक तथ्य एवं आँकड़े आदि आ जाते हैं। यह ध्यान रखा जाता है कि अप्रामाणिक बातें और पुनरावृत्ति दोष नहीं आए। उपसंहार, निष्कर्ष या अन्त आम तौर पर अन्तिम अनुच्छेद में स्थान पाता है। विषय को समेटा जाता है और पाठकीय जिज्ञासाओं को शान्त करते हुए महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष की स्थापना की जाती है। इस प्रकार कोई भी निबन्ध पूर्णता को प्राप्त होता है।

गद्य शैली निबन्ध की वह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है जो किसी भी निबन्धकार की पहचान कराती है, बेशक निबन्ध में लेखक का नाम नहीं हो लेकिन एक विशेष प्रकार की गद्य शैली की पहचान के कारण पाठक निबन्ध देखते ही पहचान सकता है कि अमुक निबन्ध किस निबन्धकार का है। शुक्ल जी की गुरु-गम्भीर शैली, हरिशंकर परसाई की व्यंग्यात्मक शैली, महादेवी वर्मा की वर्ण्य-विषय को साकार कर देने की शैली, मुक्तिबोध की कार्य-कारण परम्परा से जुड़ी शैली ये कुछ ऐसे मानदण्ड हैं कि विशिष्ट शैली विशिष्ट लेखक के व्यक्तित्व और निबन्धों की पहचान का माध्यम बन चुकी है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने के बावजूद निबन्ध की भाषा साहित्यिक होती है इस तथ्य पर निबन्धकार का बराबर ध्यान होता है। निबन्ध की सर्वस्वीकृत विशेषताओं के पश्चात् अब हम शुक्ल जी के निबन्धों का विवेचन करेंगे।

1.6 आचार्य शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएँ

शुक्ल के निबन्धों में हिन्दी निबन्ध साहित्य की सभी विशेषताओं का निदर्शन होता है। इनमें मूल रूप से विचार और विवेचन की शैली है। ये बौद्धिक मन्थन के परिणाम हैं। विचार विवेचन का अपना एक क्रम है। आरम्भ में शुक्ल प्रतिपाद्य विषय को नपी-तुली शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं। यह प्रस्तुतीकरण कहीं छोटी-सी तीन-चार पंक्तियों की भूमिका के साथ होता है तो कहीं सीधा विषय को परिभाषित करते हुए विषय को प्रस्तुत करने के बाद उसे अधिकाधिक स्पष्ट करना चाहते हैं। इस क्रम में वे विचार सूत्रों को फैलाते हैं। शुक्ल के निबन्ध मुख्यतः मनोभावों से सम्बद्ध हैं इसलिए विचार-सूत्रों का यह फैलाव मनोभाव विशेष की वर्गगत पहचान करते हुए, उससे सम्बद्ध उसी कोटि में अथवा उसके समकक्ष आने वाले अन्य मनोभावों की चर्चा करते हुए, उसकी समता-विषमता तथा सामाजिक जीवन में उनके महत्त्व के उल्लेख तक सीमित रहता है। विचार-सूत्रों को समेटते हुए वे एक बार फिर अपने मूल गंतव्य को संक्षेप में उपस्थित करते हैं। उनके निबन्ध का अन्त भी अपना एक अलग ढंग लिए होता है। किसी एक दृष्टि को आधार बनाकर अन्त किया जाता है।

शुक्ल के निबन्धों में विषय बोध

शुक्ल का ध्यान निबन्ध के विषय पर बराबर बना रहता है। निबन्ध विषय की लीक से हटता नहीं है। उसकी पहली पंक्ति लिखते हुए वे अंतिम पंक्ति को ध्यान में रखते हैं। विषय की परिभाषा देने के साथ-साथ वे वर्गीकरण, विश्लेषण, विवेचन करते हुए उदाहरण भी देते चलते हैं। विषय के सर्वांगीण पहलुओं पर एक साथ गति और पकड़ रखने का उदाहरण 'श्रद्धा-भक्ति' निबन्ध के प्रारम्भिक अनुच्छेद में देख सकते हैं। इस अनुच्छेद के छः वाक्यों का विषय बोध की

दृष्टि से विश्लेषण करते हुए शुक्ल के निबन्धों में विषयगत प्रस्तुतिकरण को समझा जा सकता है। पहला वाक्य, 'किसी मनुष्य में जनसाधारण से विशेष गुण व शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है उसे श्रद्धा कहते हैं।' दूसरा वाक्य, 'श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है।' तीसरा वाक्य, 'यदि हमें निश्चय हो जायेगा कि कोई मनुष्य बड़ा वीर, बड़ा सज्जन, बड़ा गुणी, बड़ा दानी, बड़ा विद्वान्, बड़ा परोपकारी व बड़ा धर्मात्मा है तो वह हमारे आनन्द का विषय हो जाएगा' चौथा वाक्य 'हम उसका नाम आने पर प्रशंसा करने लगेंगे, उसे सामने देख आदर से सिर नवायेंगे, किसी प्रकार का स्वार्थ न रहने पर भी हम सदा उसका भला चाहेंगे, उसकी बढ़ती से प्रसन्न होंगे और अपनी पोषित आनन्द पद्धति में व्याघात पहुँचने के कारण उसकी निन्दा न सह सकेंगे।' पाँचवां वाक्य, 'इससे सिद्ध होता है कि जिन कर्मों के प्रति श्रद्धा होती है उनका होना संसार को वांछित है।' छठा वाक्य, यही विश्व कामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।' यहाँ पहले वाक्य में परिभाषा, दूसरे में उसका (श्रद्धा का) मूल्य, तीसरे में भाव की प्रतीति के कारण उदाहरण रूप में दिए गए हैं। चौथे में सम्बन्धित भाव की प्रतिक्रिया व्यक्ति में कैसे होती है इसका स्पष्टीकरण है। पाँचवें में चारों को समेटकर इस भाव (श्रद्धा) का सामाजिक मूल्यांकन हुआ है तथा छठे में इस (श्रद्धा) भाव की महत्ता अपने चरम मूल्य के रूप में व्यक्त हुई है। इस प्रकार छहों वाक्यों में आपस में अन्विति है। शुक्ल जी एक वाक्य को दूसरे से जोड़ते हुए निष्कर्ष की ओर बढ़ते हैं। पाँचवें वाक्य में लिखा है, 'इससे सिद्ध होता है' अर्थात् इससे पूर्व के चारों वाक्यों का निष्कर्ष यहाँ दिया जा रहा है। निष्कर्ष है, 'जिन कर्मों के प्रति श्रद्धा होती है उनका होना संसार को वांछित है।' छठे वाक्य में पाँचवे को समेटा गया है और यह पूरे अनुच्छेद में अधिक प्राणवान् हो उठा है, 'यही विश्व कामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।' इस पंक्ति में 'यही' शब्द महत्त्वपूर्ण है। 'यही' का उत्तर पाँचवे में है और पाँचवे की स्थापना उससे पीछे वाले वाक्यों में है।

इस प्रकार शुक्ल के निबन्धों में विषय का स्पष्ट बोध तो है ही साथ ही सर्वत्र अन्विति भी बनी हुई है। क्रम टूट जाए तो उनके निबन्ध को समझना कठिन है। इसी प्रकार के वाक्यों की तरह क्रम प्रत्येक अनुच्छेद में भी रहता है। जब तक पहला वाक्य समझ नहीं आ जाए, हम दूसरे तक नहीं पहुँच सकते इसीलिए उनके निबन्ध रुक-रुककर पढ़ने चाहिए।

विषय के साथ व्यक्ति केन्द्र में

विषय बोध से ऊपर उठकर शुक्ल के निबन्धों में व्यक्ति की पहचान होती है। उनका विषय अन्ततः व्यक्ति से ही जुड़ा होता है क्योंकि साहित्य के माध्यम से लोकमंगल में विश्वास करने वाले लेखक के लिए जरूरी हो जाता है कि वह व्यक्ति से दूर नहीं हो। शुक्ल जी का यह व्यक्ति लोक ही है। लोक अर्थात् समूह। अभी हमने जिस उदाहरण का विश्लेषण किया है उसे यदि ध्यान से देखें तो उसके केन्द्र में व्यक्ति ही है। व्यक्ति की पहचान के लिए शुक्ल के निर्णयात्मक कथनों को

देखना चाहिए जैसे उपर्युक्त उदाहरण का छठा वाक्य, 'यही विश्वकामना श्रद्धा की प्रेरणा का मूल है।' श्रद्धा है एक व्यक्ति विशेष के प्रति लेकिन उसका कारण यह है कि श्रद्धेय के गुण विश्वकामना (कल्याण) करने वाले हैं। इस प्रकार विषय के साथ व्यक्ति केन्द्र में है लेकिन शुक्ल में व्यक्ति-संकल्पना बड़ी व्यापक है इसका अभिप्राय समस्त विश्व अथवा लोक है।

विषय की परिभाषा

विषयगत परिभाषा के कारण निबन्ध साहित्य में शुक्ल का व्यक्तित्व प्रभावित करता है। मनोभावों सम्बन्धी निबन्धों में यह विशेषता खासतौर पर उभरी है। परिभाषा का शाब्दिक अर्थ है – स्पष्ट, संशयरहित कथन। किसी शब्द का इस प्रकार अर्थ करना जिससे उस शब्द विशेष के अर्थ की विशेषता और व्याप्ति पूर्ण रूप से निश्चित हो जाए। इस दृष्टि से शुक्ल की परिभाषाएँ बहुत सफल हैं। परिभाषा उनका केन्द्र बिन्दु है। इसी के आधार पर वे सम्बद्ध विषय का विवेचन, वर्गीकरण, विश्लेषण आदि करते हैं। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ इतनी रूढ़ हो चुकी हैं कि शुक्ल प्रदत्त परिभाषा को ही सर्वस्वीकृत किया जा सकता है, जैसे, 'नाना' विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के भिन्न-भिन्न योग संघटित होते हैं जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं अथवा 'भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है।' या श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।' अथवा 'अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता इत्यादि का एकान्त अनुभव करने से वृत्तियों में जो शैथिल्य आता है, उसे ग्लानि कहते हैं। 'अथवा' जैसे दूसरे के दुःख को देखकर दुःख होता है वैसे ही दूसरे के सुख या भलाई को देखकर भी एक प्रकार का दुःख होता है, जिसे ईर्ष्या कहते हैं।' कविता की परिभाषा तो साहित्यशास्त्र में स्थापित हो ही चुकी है, 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है, हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।' इन परिभाषाओं के निर्माण में भारतीय-पश्चिमी साहित्य परम्पराओं एवं कोशों तथा मनोविज्ञान का मौलिक ढंग से आश्रय लिया गया है।

विषय का वर्गीकरण

शुक्ल के प्रायः सभी निबन्धों में वर्गीकरण की प्रवृत्ति मिलती है। विषय के विवेचन में भेद-उपभेद करना उनकी निजी विशेषता है। 'श्रद्धा-भक्ति' में वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है, 'स्थूल रूप से श्रद्धा तीन प्रकार की कही जा सकती है 1. प्रतिभा-सम्बन्धिनी, 2. शील सम्बन्धिनी और 3. साधन सम्पत्ति सम्बन्धिनी।' कहीं भेदों के भी उपभेद दिए गए हैं जैसे, 'स्थिति भेद से प्रिय या अच्छी लगने वाली वस्तु के सम्बन्ध में इच्छा दो प्रकार की होती है 1. प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा 2. दूर न करने या नष्ट न होने देने की इच्छा। प्राप्ति या सान्निध्य की इच्छा भी दो प्रकार की हो सकती है। 1. इतने सम्पर्क की इच्छा जितनी और किसी की न हो। 2. इतने सम्पर्क की इच्छा

जितना सब कोई या बहुत से लोग एक साथ रख सकते हों।' भेद – उपभेद की इस प्रवृत्ति से शुक्ल के निबन्ध विश्लेषणात्मक तो हो जाते हैं किन्तु जटिल भी बन पड़ते हैं।

विषय का विश्लेषण

शुक्ल के निबन्धों में विश्लेषण वह विशेषता है जिसके द्वारा वे मानव-मन की गहराइयों में जा पहुँचते हैं। किताबी मनोविज्ञान के साथ आदिम राग, आदिम वासनाओं (इच्छाओं) का परीक्षण और व्यवहार साहित्यिक विश्लेषण द्वारा करते हैं। एक ही समय में भाव विशेष के सजातीय अथवा विजातीय भाव का विश्लेषण अन्य किसी निबन्धकार ने नहीं किया है। 'श्रद्धा-भक्ति में ऐसे कई स्थल मिलते हैं, 'श्रद्धा द्वारा हम दूसरे के महत्त्व के किसी अंश के अधिकारी नहीं हो सकते, पर भक्ति द्वारा हो सकते हैं। यहाँ तक कि दूसरे की भक्ति करके हम तीसरे की भक्ति के अधिकारी हो सकते हैं। राम पर अनन्य भक्ति करके हनुमान अन्य राम भक्तों की भक्ति के अधिकारी हुए।' इस विश्लेषण पद्धति ने ही शुक्ल को विचारात्मक निबन्धों में अग्रणीय स्थान प्रदान किया है।

आत्माभिव्यक्ति

शुक्ल के व्यक्तित्व की छाप उनके निबन्धों में दिखाई देती है। भावों या मनोविकारों सम्बन्धी निबन्ध उनकी आत्माभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम बने हैं। व्यक्तिगत घटनाओं एवं प्रसंगों जैसे एक लखनवी दोस्त के साथ सांची जाना, एक ब्राह्मण देवता को अँगीठी जलाते देखना और काशी के बर्तन बेचने वाले दुकानदार के वार्तालाप की घटना-सभी के द्वारा उन्होंने अपनेपन की छाप निबन्धों पर छोड़ी है। व्यक्तिगत रुचि-अरुचि प्रकट करके जैसे पक्के राग गाने वालों पर फबती कसके, भारतीयों की कलासक्ति के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करके तथा कहीं प्रकृति-प्रेम और अतीत प्रेम दिखाकर भावात्मक प्रतिक्रियास्वरूप व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित किया है। इस छाप के माध्यम से शुक्ल की रुचि-अरुचि, सामाजिक विचार, लोकादर्श आदि का बोध हो जाता है।

साहित्य के भावों की अभिव्यक्ति में उनके व्यक्तित्व का निदर्शन हुआ है। उदाहरण के लिए शील के सम्बन्ध में राम के शील का मोहक रूप 'सुनि सीतापति शील सुभाउ', भगवान के सामीप्य की बात पर रसखान के 'मानुष हों तो वही रसखान', प्रिय के सुख की चिन्ता के लिए सूर का 'संदेसो देवकी सों कहियो', 'ग्लानि' में भरत की ग्लानि का वर्णन आदि में शुक्ल का भाव वैशिष्ट्य मिलता है।

सामाजिक बुराइयों के प्रति भावात्मक व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया के रूप में वे 'श्रद्धा-भक्ति' निबन्ध में झूठे सार्वजनिक उद्योगपतियों और नकलचियों पर 'हितोपदेश के गधे ने तो बाघ की खाल ही ओढ़ी थी, पर ये लो बाघ की बोली भी बोल लेते हैं' जैसी उक्तियां कही गई हैं। 'लोभ और प्रीति' में लोभियों पर फबती कसी गई है। क्षात्र धर्म के प्रशंसक रूप में उनके व्यक्तित्व की छाप 'लोभ और प्रीति' में देखी जा सकती है, 'जब तक यह व्यापारोन्माद दूर न होगा, तब तक

इस पृथ्वी पर सुख-शान्ति न होगी। दूर वह अवश्य होगा। क्षात्र धर्म की संसार में एक बार फिर प्रतिष्ठा होगी, चोरी का बदला डकैती से लिया जाएगा।' इस क्षात्र धर्म की प्रतिष्ठा शुक्ल के निबन्धों में लोकादर्शवाद के रूप में सर्वत्र हुई है।

शुक्ल जी के सन्दर्भ में समझना जरूरी है कि उनके निबन्धों में व्यक्तित्व की स्थापना अथवा आत्माभिव्यक्ति का अभिप्राय व्यक्तिवाद को प्रतिपादित करना नहीं है। इस अर्थ में वे व्यक्तिगत के विरोधी हैं। अतः आत्मकेन्द्रित, स्वार्थबद्ध राजनीतिज्ञों एवं धार्मिक उन्मादियों के उपदेशों की अवहेलना करते हैं। उनका प्रवृत्तिपरक सिद्धान्त वास्तव कर्म से बँधा हुआ है। इसी का प्रतिपादन अपने निबन्धों में भी करते हैं। इस क्रम में वे प्रकृति से भी प्रेम करते हैं जो कई अर्थों में हमें प्रेरित करती है। साँची के स्तूप देखने के प्रसंग में एक स्थल पर शुक्ल जी अपने लखनवी मित्र के साथ घूमते हुए आत्माभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं, 'मेरे मुँह से निकला - "महुओं की कैसी मीठी महक आ रही है।" इस पर लखनवी महाशय ने मुझे रोक कर कहा, "यहाँ महुए-सहुए का नाम न लीजिए, लोग देहाती समझेंगे।" मैं चुप हो गया, समझ गया कि महुए का नाम जानने से बाबूपन में बड़ा लगता है।' इस उदाहरण में शुक्ल जी के अन्तःकरण में व्याप्त गम्भीर, मार्मिक ग्रामीण एवं प्राकृतिक प्रेम की मानसिकता का पता चलता है। उनकी दृष्टि में देश प्रेम का प्रथम सोपान प्रकृति प्रेम है। उनके निबन्धों में आत्माभिव्यक्ति का अभिप्राय लोकमंगल, क्षात्र-धर्म की स्थापना, मर्यादावाद और संस्कृति को गौरवान्वित करना है। उनकी चिन्ता का मुख्य विषय व्यक्ति नहीं, लोक है।

भाषा का जीवंत प्रयोग

आचार्य शुक्ल निबन्धों के साथ भाषा के भी आचार्य हैं। उनकी गद्य भाषा विषयानुसार प्रेरित, परिवर्तित और संचालित होती है। 'उत्साह' और 'क्रोध' निबन्धों की भाषा काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था और 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' की भाषा से भिन्न है क्योंकि बाद के दोनों निबन्ध साहित्य शास्त्र से सम्बद्ध हैं अतः इनकी भाषा अपेक्षाकृत कठिन होना स्वाभाविक है। ग्रामीण से लेकर उर्दू, अंग्रेजी शब्द-प्रयोग को लेकर शुक्ल जी में कोई हिचकिचाहट नहीं। निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप के कारण भाषा की अपेक्षा अभिव्यंजना शैली अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। दरअसल शैली ही निबन्धकार को वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

अभिव्यंजना शैली

हिन्दी गद्य की अभिव्यंजना शक्ति को सशक्त बनाने वाले शुक्ल जी हैं। हास्य व्यंग्य, मुहावरों, लाक्षणिक प्रयोगों जैसी सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त गद्य से कविता का काम लिया गया है। दरअसल शुक्ल जी अर्थ ग्रहण को नहीं बल्कि बिम्ब ग्रहण को साहित्य का उद्देश्य मानते हैं। अतः मूर्तिकरण उनके अभिव्यंजना पक्ष का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इसी कारण उन्होंने स्वाभाविक अलंकरण के साथ शब्दों की नवीनता और स्वनिर्मित शब्दों का कोश सा बना डाला है। उनमें अर्थ गाम्भीर्य, भाषा की प्रौढ़ता के साथ एक विशेष प्रकार की शालीनता और प्रभाव उत्पन्न करने वाली शक्ति है। दूसरी ओर, विषयगत दुर्बोधता को उन्होंने हास्य-व्यंग्य, भावात्मक शैली के साथ निगमन, आगमन, समास, व्यास शैली के प्रयोग से संतुलित किया है। कार्य-कारण परम्परा के हिमायती शुक्ल जी उदाहरणों, उद्धरणों, तर्क-वितर्क, तुलना, निर्णय द्वारा अपने मत को प्रतिपादित करते हैं।

निगमन शैली में पहले अपनी बात को थोड़े शब्दों अर्थात् सूत्र रूप में कहते हैं फिर स्पष्टीकरण करते चलते

हैं जब तक कि विश्वास वे स्वयं नहीं कर लें कि उनकी बात पाठक को समझ आ गई होगी। बाद में आगमन शैली की तरह 'सारांश यह है कि', 'तात्पर्य यह है कि', 'अन्त में कहा जा सकता है' आदि से निष्कर्ष देते हुए निबन्ध समाप्त करते हैं। इस सूत्र शैली के कारण अनेक गम्भीर सूक्तियों का निर्माण हुआ है। ये उनकी अनुभवशीलता का परिणाम है, उनके जीवन का निचोड़ हैं। जैसे, 'बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है', 'यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण', 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है' आदि मात्र वाक्य नहीं हैं बल्कि इनकी ध्वनियाँ हमें दूर तक प्रभावित करने वाली हैं। उनके निबन्धों में कथन का प्रारम्भ समास शैली में और उसका विवेचन व्यास शैली में होता है। निबन्धों में सारगर्भिता समास शैली से सम्भव हुई है। सूत्र रूप में समास शैली और विस्तार में व्यास शैली दोनों का व्यवहार उनके निबन्धों में हुआ है।

शुक्ल जी की विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक शैली अनेक शैलियों को समेटकर चली है। दृढ़ता, अथाह विश्वास, बल, गम्भीरता उनकी विवेचना शैली के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। दृढ़ता के उदाहरणस्वरूप 'कला कला के लिए वाली बात को जीर्ण होकर मरे हुए बहुत दिन हुए। एक क्या कई क्रोचे उसे फिर ज़िला नहीं कह सकते।' इस वाक्य में कितनी शक्ति, विश्वास और दृढ़ता का समावेश है। विषयानुरूप शैली निर्वाह की अपूर्व क्षमता शुक्ल में है। कहीं-कहीं तो एक ही शब्द जैसे चौबे जी, ब्राह्मण-देवता, याचक कवि, मर्कट-तुल्य, मत्स्य तुल्य आदि से व्यंग्य की छटा बिखर गई है। लेकिन छिछलापन, हलकापन कहीं नहीं है। शिष्ट, चटक, स्वस्थ और प्रेरक व्यंग्य की उद्भावना उनके निबन्धों का मूल है। शुक्ल में भावात्मक शैली भी कई रूपों में मिलती है। कवियों की भावुकता के प्रकाशन में तो उनका हृदय रमा ही है, आत्मोल्लास में भी वे हृदय के कपाट खोल देते हैं, वह लोभ धन्य है जिससे किसी के लोभ का विरोध नहीं और लोभ की जो वस्तु अपने सब लोभियों को एक दूसरे का लोभी बनाए रहती है, वह भी परम पूज्य है। क्षोभपूर्ण भावात्मक शैली जैसे 'कोरी साधुता का उपदेश पाखण्ड है, कोरी वीरता का उपदेश उद्दण्डता है, कोरे ज्ञान का उपदेश आलस्य है और कोरी चतुराई का उपदेश धूर्तता है' में निदर्शन हुआ है।

1.7 सारांश

शुक्ल जी के निबन्धों के विषय में निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी गद्य विधा का सर्वतोमुखी विकास इनमें देखा जा सकता है। उनके अनुकरण की कोशिश में ही अनेकानेक निबन्धकार प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं फिर भी उनकी क्षतिपूर्ति सम्भव नहीं हो सकी है। हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में व्यक्तित्व व्यंजित विविधताओं के बावजूद वैज्ञानिक अनुशीलन और विवेचनात्मक प्रणाली से सम्बद्ध भाषा पद्धति के अभाव की पूर्ति शुक्ल में ही आकर पूरी हो सकी। काव्य की हमारे यहाँ एक बड़ी लम्बी, सुदृढ़ और सुविचारित परम्परा रही है जिसे आदिकाल से ही देखा जा सकता है। लगभग दो सहस्राब्दियों के काव्य-संस्कार के बीच गद्य और उसमें भी निबन्ध, जिसे कि पश्चिम की धरोहर माना जाता रहा- के माध्यम से साहित्य फलक को प्रभावित करना अपने आप में आशातीत उपलब्धि है। अतः शुक्ल जी का और उनके निबन्धों का वैशिष्ट्य सर्वविदित रूप में हिन्दी साहित्य की अनमोल धरोहर है।

1.8 कठिन शब्द

व्यंग्य, उद्भावना, साधारणीकरण, वैचित्र्यवाद, कलासक्ति, व्यापारोन्माद, सान्निध्य, प्रतिपादन, प्रस्तावना, विशृंखला ।

1.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. शुक्ल के निबन्धों पर प्रकाश डालते हुए, विशेषताओं पर सविस्तार विचार कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. निबन्ध का अर्थ एवं स्वरूप पर प्रकाश डालें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र3. निबन्ध की सामान्य विशेषताओं पर विचार करते हुए, शुक्ल के निबन्धों पर प्रकाश डालें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. साहित्य-अनुभूति और विवेचन – संसार चन्द्र
2. गद्य विधाएं – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. श्रेष्ठ निबन्ध – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त
6. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्रगुप्त
7. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ. हरदयाल
8. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ. ज्ञानेन्द्र वर्मा
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : निबन्ध यात्रा – डॉ. कृष्णदेव झाारी
10. आचार्य शुक्ल – जयनाथ नलिन
11. रामचन्द्र शुक्ल – डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
12. निबन्ध : सिद्धान्त और प्रयोग – डॉ. हरिहर नाथ द्विवेदी

.....

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध भाव प्रधान हैं अथवा बुद्धि प्रधान

- 2.0 रूपरेखा
- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 प्रस्तावना
- 2.3 शुक्ल के निबन्धों में भाव पक्ष
- 2.4 शुक्ल के निबन्धों में बुद्धि तत्व
- 2.5 सारांश
- 2.6 कठिन शब्द
- 2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

2.1 उद्देश्य :

- विचारात्मक एवं भावात्मक निबन्ध का भेद जान सकेंगे ।
- शुक्ल के निबन्ध भाव प्रधान है या बुद्धि प्रधान, यह जान सकेंगे ।

2.2 प्रस्तावना :

निबन्ध में भावना के साथ विचारों को पिरोना, एक साथ बांधना, बुनना या संकलन करना आवश्यक है। विषय प्रतिपादन में एक निष्ठ भाव से चिंतन के लिए तर्कपूर्ण क्षमता का होना अनिवार्य

होता है। जैसे शुक्ल के निबन्धों में गहन गम्भीरता, प्रौढ़ता, चिन्तन आदि बुद्धितत्व साहित्य का सामान्य तत्व है विचारात्मक निबन्धकार का भी कौशल इसी बात में है कि वह विचार-सूत्रों के बीच-बीच में अपनी व्यक्तिगत रुचियों-अरुचियों, भावनाओं और जीवन तथा जगत के प्रति अपनी रागात्मक प्रतिक्रियाओं को इस प्रकार व्यक्त करता चले, जिससे पाठक का मन उदात्त भाव रस में आनन्द ले और लेखक के व्यक्तित्व का पूर्ण आभास पा सकें।

आचार्य शुक्ल के विचारात्मक एवं भावात्मक निबन्धों का समानान्तर व्यवहार इस प्रश्न को प्रारम्भ से ही जन्म देता है कि उनके निबन्ध भाव प्रधान हैं अथवा बुद्धि प्रधान। दूसरे शब्दों में कहें तो ये निबन्ध व्यक्ति प्रधान हैं अथवा विषय प्रधान। वास्तव में चिन्तामणि के 'निवेदन' में शुक्ल ने भूमिका रूप में बुद्धि एवं हृदय पक्ष को लेकर जो चर्चा की है उसी से यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उन्होंने लिखा, 'इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा तो निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर। अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँची है, वहाँ हृदय थोड़ा-बहुत रमता अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता रहा है। बुद्धि पथ पर अग्रसर हृदय भी अपने लिए कुछ न कुछ पाता रहा है।' आगे वे लिखते हैं, 'इस बात का निर्णय मैं विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूँ कि ये निबन्ध विषय प्रधान हैं या व्यक्ति प्रधान।' प्रत्येक रचना में रचनाकार का व्यक्तित्व कम-अधिक मात्रा में समाविष्ट होता है। निबन्ध में दो प्रकार के तत्व संयोजित होते हैं एक विषयगत अर्थात् वस्तुगत और दूसरा व्यक्तिगत अर्थात् आत्मगत। विषय तत्व का अर्थ है विषय का यथार्थ विवेचन और इस विवरण में निबन्धकार के व्यक्तित्व से कोई अन्तर नहीं आता। व्यक्ति प्रधान से अभिप्राय है विषय और शैली के धरातल पर विषय बोध से बढ़कर निबन्धकार के निजी व्यक्तित्व का बोध होना।

यहाँ ध्यान देने की बात है कि शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में व्यक्ति प्रधान का अर्थ सामाजिक रूप में स्पष्ट किया है, व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसकी प्रदर्शनी के लिए विचारों की शृंखला रखी ही न जाए या जानबूझ कर जगह - जगह से तोड़ दी जाए, भावों की विचित्रता दिखाने के लिए ऐसी अर्थ योजना की जाए जो उनकी अनुभूति के प्रकृत या लोक सामान्य स्वरूप से कोई सम्बन्ध ही न रखे अथवा भाषा से सरकस वालों की सी कसरतें या हठयोगियों के से आसन कराए जाएँ, जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।' इस प्रकार शुक्ल के लिए विषय प्रधानता महत्वपूर्ण है।

प्रत्येक निबन्ध में थोड़ी बहुत मात्रा में बौद्धिकता और सहृदयता दोनों रहती हैं अर्थात् मस्तिष्क (विचार) पक्ष और हृदय (भाव) पक्ष विद्यमान होता है। बौद्धिकता अर्थात् मस्तिष्क पक्ष की प्रधानता होने पर निबन्ध विषय प्रधान होता है और भावुकता अर्थात् हृदय पक्ष की अधिकता पर व्यक्ति प्रधान बन जाता है। विचारात्मक निबन्ध विषय प्रधान और भावात्मक निबन्ध व्यक्ति प्रधान

होते हैं। विषय प्रधान निबन्धों में विषय पर विवेचन क्रमबद्ध ढंग से होता है। विचारों की तर्कसंगत शृंखला शुरू से अन्त तक रहती है। शब्द चयन सजगता के साथ और वाक्य कसे हुए होते हैं। व्यक्ति प्रधान निबन्धों में विचार शृंखला खण्डित हो जाती है और आत्मपरक रुचि-अरुचि के प्रसंग बीच में आ जाते हैं। शब्द सामान्य और वाक्य छोटे किन्तु भावप्रधान होते हैं।

शुक्ल जी के 'निवेदन' में अन्तर्यात्रा की रूपक योजना से निबन्धों में बुद्धि की प्रधानता स्पष्ट है। अन्तर्यात्रा का नेतृत्व बुद्धि ही करती है और हृदय उसका अनुगमन करता रहा है। बुद्धि की प्रधानता विषय की ही प्रधानता है क्योंकि बुद्धि की विशेषता और सार्थकता विषय के वस्तुगत विवेचन और विश्लेषण में ही प्रकट होती है। भाव पक्ष का अवलम्बन शुक्ल ने शैली के सन्दर्भ में विशेष रूप से लिया है क्योंकि निबन्ध की शैली रचनाकार के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है। कुल मिलाकर भाव और बुद्धि पक्ष के इस पूरे विवेचन में पर्यायवाची के तौर कुछ शब्दों को रखना और समझना श्रेयस्कर है हालाँकि स्थूल रूप से भाव पक्ष और बुद्धिपक्ष ही व्यवहार में प्रचलित शब्द हैं। भाव पक्ष को हम भाव प्रधान, व्यक्ति प्रधान, आत्मगत, विषयीगत, निर्बन्ध निबन्ध अथवा सब्जेक्टिव (**Subjective**) कह सकते हैं। बुद्धि पक्ष को बुद्धि प्रधान, विषय प्रधान, वस्तुगत, विषयीगत, विचारात्मक, परिबन्ध निबन्ध अथवा ओबजेक्टिव (**Objective**) कह सकते हैं।

विषय प्रधान अथवा बुद्धि प्रधान निबन्धों में विषय की प्रधानता सर्वत्र रहती है। स्वयं लेखकीय व्यक्तित्व विषय के प्रतिपादन की ओर ध्यान केन्द्रित करता है। विषय प्रधान अथवा भाव प्रधान निबन्ध में निबन्धकार को आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता होती है। इस प्रकार का निबन्ध मानवीय और भावना प्रधान संवेदनाओं से परिपूर्ण होता है। इनमें बुद्धि तत्व कम और साहित्य के अन्य तीनों तत्वों कल्पना, भावना और शैली का आधिक्य होता है। पाठक सीधे रचनाकार के साथ निकटता महसूस करता है। इस दृष्टि से शुक्ल के निबन्ध विषय प्रधान अर्थात् बुद्धि प्रधान निबन्धों की कोटि में आते हैं। हालाँकि उनके निबन्धों में आत्माभिव्यक्ति एवं भावुकता का स्थान गौण नहीं है। विषय का विवेचन, अपना अध्ययन-मनन, चिन्तन और निष्कर्ष पाठकों के समक्ष उन्होंने प्रस्तुत किया है। उनकी स्वच्छन्द मनःस्थिति भी इन निबन्धों में मिलती है किन्तु वे विषय से भटकते नहीं हैं। उनके मौलिक विचार और विशिष्ट शैलीकार का व्यक्तित्व निबन्धों में हैं ज़रूर, किन्तु प्रवृत्ति, उद्देश्य और प्रतिपादन शैली आदि सभी दृष्टियों से विषय प्रधान, विचारपरक और बुद्धि प्रधान ही हैं। इतना होने पर भी यह सत्य है कि शुक्ल के पास एक आलोचक का मस्तिष्क और एक कवि का हृदय है जिसके रहते बुद्धि और भाव पक्ष तराजू के दो पलड़ों की भाँति उनके निबन्धों में बराबर दोलायमान रहते हैं।

2.3 शुक्ल के निबन्धों में भाव पक्ष

शुक्ल के निबन्धों की भाव प्रधानता बौद्धिक यात्रा के श्रम का परिहार करती है। उनके भावात्मक हृदय की प्रतिक्रिया और भावानुभूति उनके निबन्धों में व्यक्त होती रहती है। सामाजिक

विषमता के प्रति भावात्मक प्रतिक्रिया स्वरूप उनके हृदय की विभिन्न अवस्थाएँ जैसे भावुकता, क्षुब्धता, मुग्धता, उत्साह, उल्लास देखी जा सकती हैं। राम के कर्म सौन्दर्य में रसलीन स्थिति, प्रकृति और स्मृति में भावमग्न दशा, समाज के आडम्बरो से क्षुब्ध होने की अवस्था, कृत्रिम सभ्यता पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी उनके भावनामय हृदय को सामने लाती है।

सामाजिक विषमताओं के प्रति भावात्मक प्रतिक्रियाओं को शुक्ल ने घृणा के रूप में अभिव्यक्त किया है। विषमता के कारणों पर वे क्षोभ मिश्रित घृणा और विषमता फैलाने वाले लोगों पर व्यंग्य मिश्रित घृणा दिखाते हैं। 'भय' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने यूरोप के व्यापारोन्माद के प्रति घृणा व्यक्त की क्योंकि इसके कारण मानव का शोषण हो रहा है। इसको पतला करके मोटा बनने वालों के प्रति क्षोभ जनित घृणा का रूप 'लोभ और प्रीति' शीर्षक निबन्ध में इस प्रकार सामने आता है, मोटे आदमियों! तुम जरा-सा दुबले हो जाते-अपने अन्देशों से सही-तो न जाने कितनी ठठरियों पर माँस चढ़ जाता।' व्यक्तित्व के प्रकाशन के कारण हास्य व्यंग्ययुक्त घृणा का प्रयोग उन्होंने अधिक किया है। 'लोभ और प्रीति' निबन्ध में लोभियों के जीवन की असंगति और बुराई पर हास्य व्यंग्यमयी घृणा से चोट की गई है, 'लोभियों का दमन योगियों के दमन से किसी प्रकार कम नहीं होता। लोभ के बल से वे काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान-अपमान में समान भाव रखते हैं। अब और चाहिए क्या ?' टका धर्म पर उनकी फ़ल्ती, नकली बाबुओं पर चुटकी, चौबेजी पर व्यंग्य आदि में भावात्मक प्रतिक्रियाओं को बल मिला है यहाँ तक कि कलाकार भी उनकी इस फ़ल्ती से बच नहीं पाए हैं। 'श्रद्धा-भक्ति' निबन्ध में पक्का संगीतज्ञ उनके कटाक्ष का विषय बना है, 'संगीत के दांव-पेंच देखकर भी हठयोग याद आता है। जिस समय कोई कलावन्त पक्का गाना गाने के लिए आठ अंगुल मुँह फैलाता है और 'आ' 'आ' करके विकल होता है, उस समय बड़े-बड़े धीरों का धैर्य छूट जाता है - दिन भर चुपचाप बैठे रहने वाले बड़े-बड़े आलसियों का आसन डिग जाता है।' इस प्रकार उनकी घृणा वास्तव में वीभत्स रस के अर्थ में नहीं है बल्कि किसी भी प्रकार की असंगति अथवा विसंगति से क्षोभ, दया, हास्य आदि रूप में व्यक्त होती है।

शुक्ल जी का हृदय यदि असमानता, असंगति में चीत्कार कर उठता है तो दूसरी ओर सुन्दर रमणीक दृश्य, साहित्यिक प्रसंगों में भावमग्न भी हो जाता है। जहाँ भी अवसर मिलता है वे साहित्य-भावात्मक प्रसंगों को उद्धृत करते हैं। 'लोभ और प्रीति' निबन्धों में इनकी भरमार है। याचक और दाता-दोनों के लोभ की भर्त्सना वे रहीम के दोहे से करते हैं, 'रहिमन वे नर मर चुके जे कहूँ माँगन जाहिं। उनतें पहिले वे मुए जिन मुँह निकसत नाहिं।।' प्रेम की उच्च दशा का उदाहरण वे सूर की गोपियों से देते हैं। कहीं फाग (होली) खेलती नायिका की उक्ति पद्माकर से उद्धृत करते हैं, 'नैन नचाय कहीं मुसकाय लला फिर आइयो खेलन होरी'। दूसरी ओर रसखान की भगवद् भक्ति के उदाहरण रूप में प्रसिद्ध सवैये को प्रस्तुत करते हैं। 'मानुष हो तो वहि रसखानि बसै जो गोकुल धाम के द्वारे'। साथ-साथ तुलसीदास के भक्तिपूर्ण पदों, सूरदास की सरस पदावली, देव-मतिराम की रस धारा में तल्लीन होते हैं। इसीलिए नवरस उनके निबन्धों में शृंगार,

करुणा, प्रेम, लज्जा, लोभ, शोक, हास आदि मनोभावों के रूप में प्राप्त होते हैं। साहित्यिक उक्तियों को अपनाने के क्षेत्र में उन्होंने पोप की पंक्तियों का हिन्दी अनुवाद 'कविता क्या है' निबन्ध में किया है। 'त्रिवेणी' में सूर, तुलसी और जायसी की टिप्पणियों में उनकी भाव सबलता को आसानी से देखा जा सकता है।

कविता को नर क्षेत्र, नरेतर और समस्त चराचर जगत् से जोड़ने वाले शुक्ल के लिए प्रकृति प्रेम और प्राकृतिक रूप छवियों से अनुराग स्वाभाविक है। प्राकृतिक सान्निध्य के ऐसे स्थलों पर बुद्धि एक तरफ छूट जाती है और भावों का तीव्र आवेग आलोड़ित हो उठता है। 'कविता क्या है' शीर्षक निबन्ध इस दृष्टि से प्रशंसनीय है, 'यदि अपने भावों को समेटकर मनुष्य अपने हृदय को शेष सृष्टि से किनारे कर ले या स्वार्थ की पशुवृत्ति में ही लिप्त रखे तो उसकी मनुष्यता कहाँ रहेगी? यदि वह लहलहाते हुए खेतों और जंगलों, हरी घास के बीच घूम-घूमकर बहते हुए नालों, काली चट्टानों पर चाँदी की तरह ढलते हुए झरनों, मंजरी से लदी हुई अमराइयों और तट पर के बीच खड़ी झाड़ियों को देख क्षण-भर लीन न हुआ, यदि कलरव करते हुए पक्षियों के आनन्दोत्सव में उसने योग न दिया, यदि खिले हुए फूलों को देख वह न खिला, यदि दीन-दुखी का आर्तनाद सुन वह न पसीजा, यदि अनाथों और अबलाओं पर अत्याचार होते देख क्रोध से न तिलमिलाया, यदि किसी बेढब और विनोदपूर्ण दृश्य या उचित पर न हँसा तो उसके जीवन में रह क्या गया? इस विश्व काव्य की रसधारा में जो थोड़ी देर के लिए प्रकृति से प्रेरणा का काम लेने का उत्साह शुक्ल जी में इतना अधिक है कि निबन्ध में भी स्वरचित पद्यात्मक पंक्तियों का लोभ संवरण नहीं कर पाये हैं। बन्दर के माध्यम से मनुष्य की स्वार्थपरता को खण्डित करने की प्रेरणा देते हुए इसी निबन्ध में कहते हैं:

देते हैं घुड़की यह अर्थ-ओज-भरी हरि
 "जीने का हमारा अधिकार क्या न रह गया ?
 पर प्रतिषेध के प्रसार बीच तेरे नर!
 क्रीडामय जीवन उपाय है हमारा यह।
 दानी जो हमारे रहे, वे भी पास तेरे हुए,
 उनकी उदारता भी सकता नहीं तू सह।
 फूली फली उमंग उपकार की तू
 छेकता है जाता, हम जाँँ कहाँ, तू ही कह!"

प्रकृति प्रेम के अभाव में शुक्ल राष्ट्र प्रेम को सम्भव नहीं मानते। प्रकृति के प्रति अनुराग इतना अधिक है कि नरेतर क्षेत्र भी उनकी भावुकता के खेमे में आ गया है। शहरों में बसे ग्रामीणों का साथ पशु-पक्षी नहीं छोड़ते, 'कबूतर हमारे छज्जे के नीचे सुख से सोते हैं, गौर हमारे घर के भीतर आ बैठते हैं, बिल्ली अपना हिस्सा या तो म्याँव-म्याँव करके माँगती है या चोरी से ले जाती है, कुत्ते

घर की रखवाली करते हैं और वासुदेव जी कभी-कभी दीवार फोड़कर निकल पड़ते हैं।' स्पष्ट है कि शुक्ल के निबन्धों में उनका कवि हृदय और उसकी भावुकता समाहित है।

निबन्ध विधा में निबन्धकार के व्यक्तित्व की छाप अंकित रहती है। अतः लेखक के वैयक्तिक जीवन प्रसंगों, घटनाओं एवं अनुभवों से निबन्ध में भाव प्रधानता देखते ही बनती है। 'लोभ और प्रीति' नामक निबन्ध में एक लखनवी दोस्त के साथ सांची जाने के प्रसंग में शुक्ल ने अपना प्रकृति प्रेम, देश-प्रेम और बाबुओं पर व्यंग्य आदि कई भावों को एक साथ व्यक्त किया है। जैसे "यह स्तूप एक बहुत सुन्दर छोटी सी पहाड़ी के ऊपर है। नीचे एक छोटा सा जंगल है, जिसमें महुए के पेड़ भी बहुत से हैं। बसंत का समय था। महुए चारों ओर टपक रहे थे। मेरे मुँह से निकला "महुओं की कैसी मीठी महक आ रही है।" इस पर लखनवी महाशय ने मुझे रोक कर कहा, "यहाँ महुए-सहुए का नाम न लीजिए, लोग (पुरातत्व विभाग के लोग) देहाती समझेंगे।" मैं चुप हो गया, समझ गया कि महुए का नाम जानने से बाबूपन में भारी बट्टा लगता है।" 'श्रद्धा-भक्ति' शीर्षक निबन्ध में दुकानदार की उक्ति पर व्यंग्य करते हुए शुक्ल बताते हैं, 'एक दिन मैं काशी की एक गली से जा रहा था। एक ठठरे की दुकान पर कुछ परदेसी यात्री किसी बरतन का मोल भाव कर रहे थे कि इतना नहीं-इतना लो तो लें। इतने ही में सौभाग्यवश दुकानदार जी को ब्रह्मज्ञानियों की याद आ गयी और उन्होंने चट कहा - माया छोड़ो और ले लो।' 'रसात्मक बोध के विविध रूप' निबन्ध में अपनी अबोधता को स्वीकारते हुए बताते हैं, 'रात्रि में, विशेषतः वर्षा की रात्रि में झींगुरों और झिल्लियों के झंकार मिश्रित चीत्कार का बँधा तार सुनकर लड़कपन में मैं यही समझता था कि रात बोल रही है।' 'लज्जा और ग्लानि' में व्यंग्य मिश्रित यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं मैंने कुत्ते के कई शौकीनों को अपने कुत्ते की बदतमीजी पर शरमाते हुए देखा है"। शुक्ल जी के आत्मगत प्रसंगों के संदर्भ में ध्यान देने की बात है कि मनोभावों सम्बन्धी निबन्धों में उनका व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक मुखरित हुआ है। शेष निबन्धों में व्यक्तित्व को कम स्थान मिला है।

मनोभावों या मनोविकारों विषयक निबन्धों में विषय के स्पष्टीकरण हेतु शुक्ल जी दैनिक जीवन के अनुभवों का सहारा लेते हैं। 'क्रोध' शीर्षक निबन्ध में प्रतिकार, बदला, क्रोध जैसे सूक्ष्म अंतर्को को स्पष्ट करने के लिए वे एक सर्वसाधारण सा उदाहरण लेते हैं, 'एक-दूसरे से परिचित दो आदमी रेल पर जा रहे हैं। इनमें से एक को अगले ही स्टेशन पर उतरना है। स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते बात ही बात में एक ने दूसरे को तमाचा जड़ दिया और उतरने की तैयारी करने लगा। अब दूसरा मनुष्य भी यदि उतरते-उतरते उसे एक तमाचा लगा दे तो यह उसका बदला या प्रतिकार ही कहा जायेगा।' इसी प्रकार 'घृणा' निबन्ध में घृणा और क्रोध का अन्तर बताने के लिए वे बेहद सामान्य उदाहरण दते हैं जिससे निबन्ध की बोझिलता को भावना से कम किया जा सके, 'यदि होली में कोई गन्दी गालियाँ बकता चला जाता है तो घृणा मात्र लगने पर आप उन्हें मारने न जायेंगे, उससे दूर हटेंगे, पर यदि आप जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ वह भी आपके साथ-साथ अश्लील बकता जाता है तो आप उस पर पिल्ल पड़ेंगे।' इस प्रकार शुक्ल जी का

भावनामय हृदय गम्भीर निबन्धों में भी सरसता और रोचकता प्रदान करता है। निबन्धों में उनका भाव पक्ष प्रबल है।

2.4 शुक्ल जी के निबन्धों में बुद्धि तत्व

कोई भी विधा विशुद्ध मस्तिष्क प्रधान अथवा हृदय प्रधान नहीं होती। महत्त्व केवल इस बात का है कि किसी साहित्यिक विधा में एक का अनुपात अधिक होता है और किसी अन्य में दूसरे का प्रतिशत ज़्यादा हो सकता है। ज्यों तो साहित्य अथवा कला माध्यमों का मूल सरोकार भावना या हृदय से अधिक मेल खाता है किन्तु परिवेश और समय के बदलने से सरोकार भी परिवर्तित होते जाते हैं क्योंकि व्यक्ति हो अथवा विधा सभी की सापेक्षता समाज, परिवेश अपने युग से जुड़ी होती है। कविता और निबन्ध में भावना की प्रधानता स्वीकृत रही है किन्तु आधुनिक दौर के साहित्य को देखें तो आसानी से पहचाना जा सकता है कि आज की कविता विशुद्ध भावना प्रधान अथवा गीतात्मक शैली से कोसों की दूरी पर खड़ी है। शुक्ल जी ने इस परिवर्तन को गद्य में सबसे पहले पहचान और निबन्ध को व्यक्तिगत जीवन संदर्भों तक ही सीमित नहीं रखकर एक विशिष्ट प्रकार की शैली (व्यक्तिगत शैली) से संवारा। दूसरी ओर, उन्होंने विज्ञान की ज़रूरत और मनोविज्ञान के बढ़ते दबाव को महसूस करते हुए निबन्ध में बुद्धि तत्व की पैरवी की। अतः शुक्ल में आकर निबन्ध न केवल मस्तिष्क की चेतना से जुड़ा बल्कि हृदय और बुद्धि का सामंजस्य भी इस विधा में स्वीकृत हुआ।

शुक्ल जी ने जीवन और साहित्य के भावों में मूलरूप से कोई अन्तर नहीं किया क्योंकि साहित्य उनकी दृष्टि में लोक मंगल का माध्यम है। यही कारण है कि रस के अलौकिकत्व को उन्होंने लौकिक सिद्ध किया। रस की स्थिति काव्य से अलग लौकिक जीवन में भी बताकर जीवन के महत्त्व को स्थापित किया। उन्होंने लोक जीवन की ठोस धरती पर खड़े होकर साहित्यिक मान्यताएँ स्थापित कीं। काव्य की कसौटी लोक सामान्य की भाव भूमि के रूप निर्धारित किये और उन्होंने व्यक्तिवादी और विशुद्ध भाववादी संकुचित धारणाओं से साहित्य को मुक्त किया और उसे सामाजिक जीवन का अंग बनाया। मनुष्य के भावों का स्रोत यही नाना रूपात्मक जगत है। इससे बाहर वे सौन्दर्य की स्थिति स्वीकारते हैं। वे मानव ज्ञान को भी लोकबद्ध मानते हैं। ज्ञान इस व्यक्त और गोचर रूप जगत् का ही होता है, अज्ञात-रहस्यमयी अगोचर शक्ति का नहीं। शुक्ल इसीलिए अध्यात्म शब्द को काव्य में स्थान नहीं देते। वे जीवन और जगत् की सत्यता को स्वीकारने वाले तथा इसी में सौन्दर्य राशि को देखने वाले निबन्धकार हैं।

शुक्ल जी का जीवन दर्शन प्रवृत्तिमूलक है। वे निवृत्ति मार्ग को पाखण्ड मानते हैं। यहाँ शुक्ल जी के सन्दर्भ में इन दोनों शब्दों को समझना ज़रूरी है क्योंकि भारतीय दर्शन में प्रवृत्ति भोग और निवृत्ति योग का प्रतीक है, जबकि शुक्ल के लिए प्रवृत्ति का अर्थ कर्म और निवृत्ति का अर्थ

पलायन अथवा अकर्मण्यता है। लोकमंगल की कसौटी पर साहित्य को कसने वाला आचार्य भला निवृत्ति अर्थात् अकर्मण्यता का पक्षधर कैसे हो सकता है। शुक्ल कर्म सौन्दर्य के सच्चे उपासक हैं। गीता के निष्काम कर्म की व्याख्या जैसी उन्होंने 'उत्साह' निबन्ध में की है वह अपने आप में उनका मौलिक प्रयास और व्याख्या है। वे हिन्दू जाति की अकर्मण्यता पर ज़बरदस्त प्रहार करते हैं। वे कर्म मार्ग के राही होने के साथ पथ प्रदर्शक भी हैं। कर्म में आनन्द अनुभव करने वालों का ही नाम कर्मण्य है। उनका कर्म मार्ग क्षात्र धर्म को उचित मानता है और सर्वाधिक महत्त्व देता है जबकि भारतीय दर्शन में पुरोहित धर्म सर्वश्रेष्ठ है। शुक्ल जी का कर्म मार्ग क्षात्र धर्म से सम्बन्धित है और अत्याचार एवं अत्याचारी का दमन करने वाला प्रचण्ड मार्ग है। इसीलिए, 'क्षात्र धर्म पालन की आवश्यकता संसार में सब दिन बनी रहेगी' में उनका अखण्ड विश्वास है। तभी तो वे अहिंसात्मक प्रतिरोध और अत्याचारी को गले लगाने की नीति का विरोध करते हैं। सभी प्रकार के अन्याय, अत्याचार तथा अधर्म के नाश का एकमात्र साधन वे क्षात्र धर्म के पालन को मानते हैं। आर्थिक वैषम्य और प्रतिस्पर्धा से भरे व्यापार उन्माद के बीच क्षात्र धर्म एकमात्र उपाय है। 'लोभ और प्रीति' निबन्ध में बौद्धिक धरातल पर वे इस गला-काट संस्कृति से छुटकारे का समाधान बताते हैं, 'जब तक यह व्यापारोन्माद दूर न होगा तब तक इस पृथ्वी पर सुख शान्ति न होगी। दूर वह अवश्य होगा। क्षात्र धर्म की संसार में एक बार फिर प्रतिष्ठा होगी। चोरी का बदला डकैती से लिया जाएगा।' इस प्रकार शुक्ल जी स्थूल अर्थों में जनवादी न होकर जीवनवादी विचारक ठहरते हैं। वे प्रत्येक मत और सिद्धान्त को अध्यात्म की नहीं, बुद्धि की कसौटी पर कसते हैं। उन्होंने सृष्टि के विकास का क्रम विकासवाद के बुद्धिसंगत सिद्धान्त के अनुसार ही स्वीकृत किया है। 'तुलसी का लोकधर्म' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने भक्ति का विकास मानवता के इसी बुद्धिप्रदत्त विकासवादी सिद्धान्त के आधार पर दिखाया है। सभ्यता के विकास के साथ भय की सीढ़ी पार करने पर ही शुक्ल वास्तविक भक्ति का विकास सम्भव मानते हैं। अन्धविश्वास का शिकार होकर बुद्धि की अवहेलना उन्हें स्वीकार्य नहीं है।

क्षात्र धर्म की महत्ता प्रतिपादित करने के क्रम में शुक्ल राजनीतिक दांव-पेंचों से परे देश प्रेम को परिभाषित करते हैं। उनके देशप्रेम की कसौटी मंच पर खड़े नेता का भाषण नहीं है बल्कि शुक्ल जी सच्चा देश प्रेमी उसे मानते हैं जो देश के कण-कण से प्रेम करता हो, जो देश की मिट्टी को मस्तक पर धारण करता हो और देश के लोगों के सुख - दुःख का भागीदार बनता हो। वे उन झूठे बाबुओं पर व्यंग्य करते हैं जो राष्ट्र प्रेम के नाम पर देश की आर्थिक अवस्था का हिसाब-किताब किया करते हैं और जिन्हें अपने ही देश के गरीब एवं ग्रामीण भाईयों से नफरत होती है। 'ईर्ष्या' निबन्ध में छोटे-बड़े के आधार पर भेदभाव करने वालों पर वे बरसते हैं, न्यायधीश न्याय करता है, कारीगर ईंटें जोड़ता है। समाज कल्याण के विचार से न्यायधीश का साधारण व्यवहार में कारीगर के प्रति यह प्रकट करना उचित नहीं कि तुम इसमें छोटे हो। जिस जाति में इस छोटाई-बड़ाई का अभिमान जगह-जगह जमकर दृढ़ हो जाता है उसके भिन्न वर्गों के बीच स्थायी

ईर्ष्या स्थापित हो जाती है और संघ शक्ति का विकास बहुत कम अवसरों पर देखा जाता है'।

देश प्रेम को हृदयगत संस्कारों का विषय मानने के साथ शुक्ल जी मानते हैं कि देश की भौगोलिक सीमा, प्राकृतिक वैभव, जन-सम्पदा, संस्कृति, जातीय गौरव आदि से परिचित हुए बिना सच्चा राष्ट्र प्रेमी नहीं बना जा सकता। 'लोभ और प्रीति' में उन्होंने लौकिक एवं वैयक्तिक प्रेम के साथ राष्ट्र प्रेम की गहराई के कारणों का विवेचन किया है। स्पष्ट है कि शुक्ल का राष्ट्र प्रेम कोरी भावुकता का विषय नहीं बल्कि राष्ट्र और उसकी अस्मिता के परिचय से उपजा बौद्धिक प्रेम भी है, 'यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, लता-गुल्म, वन, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा, सब को वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा, सबकी सुध करके वह विदेश में आँसू बहायेगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं ज्ञांकते कि किसानों के झोंपड़े के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का परता बताकर देश-प्रेम का दावा करें, तो उनसे पूछना चाहिए कि 'भाईयों! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा? जिनके सुख-दुःख के तुम कभी साथी न हुए, उन्हें तुम सुखी देखना चाहते हो, यह समझते नहीं बनता। रसखान तो किसी भी लकुटी और कमरिया पर तीनों पुरों का राजसिंहासन तक त्यागने को तैयार थे, पर देश प्रेम की दुहाई देने वालों में से कितने अपने किसी थके माँदे भाई के फटे-पुराने कपड़ों और धूल भरे पैरों पर रीझकर, या कम-से-कम खीझकर बिना मन मैला किए कमरे की फर्श भी मैला होने देंगे?'

प्राकृतिक प्रेम के रूप में भी देशानुराग की प्रबलता शुक्ल जी मानते हैं। 'कविता क्या है' निबन्ध में सच्चे देश प्रेमी को इस प्रकार व्यंजित करते हैं, 'पूर्वमेघ' तो यहाँ से वहाँ तक प्रकृति की ही एक मनोहर झाँकी या भारतभूमि के स्वरूप का ही मधुर ध्यान है। जो इस स्वरूप के ध्यान में अपने को भूलकर कभी-कभी मग्न हुआ करता है वह घूम-घूमकर वक्तृता दे या न दे, चन्दा इकट्ठा करे या न करे, देशवासियों की आमदनी का औसत निकाले या न निकाले, सच्चा देश प्रेमी है।' इस प्रकार शुक्ल की दृष्टि में प्राकृतिक एवं भौगोलिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर ही राष्ट्र प्रेमी हुआ जा सकता है।

देश प्रेम की भाँति शुक्ल ने भक्ति के स्वरूप को भी अपने ढंग से व्याख्यायित किया है। उनकी भक्ति भगवान् के सत्स्वरूप की संकल्पना इसी जगत् में स्वीकार करती है। वे नर में नारायण के दर्शन के आकांक्षी हैं। जीवन और जगत् का त्याग करके घट (आत्म) के भीतर किसी अज्ञात अदृष्ट की साधना उन्हें मान्य नहीं है। 'लोभ और प्रीति' में वे रामभक्त को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, 'मेरे देखने में तो वही रामभक्त-सा लगता है जो अपने पुत्र-कलत्र, भाई-बहिन, माता-पिता से स्नेह का व्यवहार करता है, रास्ते में चींटियाँ बचाता चलता है, किसी प्राणी का दुःख देख आँसू बहाता हुआ रुक जाता है, किसी दीन पर निष्ठुर अत्याचार होते देख क्रोध से तिलमिलाता हुआ अत्याचारी का हाथ थामने के लिए कूद पड़ता है, बालकों की क्रीड़ा देख विनोद से पूर्ण हो जाता है। लहलहाती हुई हरियाली देख लहलहा उठता है और खिले हुए फूलों को देख खिल जाता है।' स्पष्ट है कि शुक्ल की अध्यात्म भावना बौद्धिकता से संचालित है।

मनोविकारों सम्बन्धी निजी परिभाषाओं में भी शुक्ल की तार्किक एवं बौद्धिक विचार शृंखला को देखा जा सकता है। इनका एक ठोस सामाजिक आधार है। उनके भाव निरूपण का उद्देश्य भी मनुष्य की व्यावहारिक एवं तार्किक क्षमता को जागृत करना है। वे प्रत्येक मनोविकार का सामाजिक दृष्टि से आकलन करते हैं। पाश्चात्य फ्रायडियन सिद्धान्त या यान्त्रिक भौतिकवादी विचारधारा उन्हें मान्य नहीं, जो व्यक्ति को कुण्ठाओं का शिकार बनाकर परिस्थितियों का दास बना देती है। इनसे दूर हटकर शुक्ल भावों या मनोविकारों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता को सामाजिक पहलू से आँकते हैं। उदाहरण के लिए 'ईर्ष्या' निबन्ध में वे ईर्ष्या को अनावश्यक भाव बताकर उसकी तुलना में स्पर्धा का महत्त्व बताते हैं, 'स्पर्धा संसार में गुणी, प्रतिष्ठित और सुखी लोगों की संख्या में कुछ बढ़ती करना चाहती है और ईर्ष्या कमी।' क्रोध सर्वथा निन्दनीय है किन्तु शुक्ल इसे सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से महत्त्व देते हैं। 'क्रोध' निबन्ध में सामाजिक जीवन को अत्याचारी-अन्याय से बचाने के लिए क्रोध के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है, 'क्षमा जहाँ से श्रीहत हो जाती है, वहीं से क्रोध के सौन्दर्य का आरम्भ होता है।' यहाँ लोकपीडक रावण के दमन में प्रवृत्त राम के आग्नेय नेत्रों में भी उन्हें अद्भुत सौन्दर्य दिखाई देता है। शील के लिए वे लज्जा और संकोच को ज़रूरी बताते हैं किन्तु इनकी अधिकता को लोक व्यवहार में बाधक भी मानते हैं। ग्लानि को आत्म परिष्कार का माध्यम बताते हैं तथा भक्ति-श्रद्धा की सामाजिक उपयोगिता सिद्ध करते हैं। 'उत्साह' निबन्ध में कर्मयोग की प्रतिष्ठा करते हैं, 'किसी भाव के अच्छे या बुरे होने का निश्चय अधिकतर उसकी प्रवृत्ति के शुभ या अशुभ परिणाम से होता है।' इस प्रकार विपरीत समझे जाने वाले भावों को तार्किकता की कसौटी पर कसकर शुक्ल लोकहित के लिए उन्हीं विरोधी भावों की उपयोगिता सिद्ध करते हैं।

शुक्ल ने काव्य एवं कला का बौद्धिक पक्ष उद्घाटित किया है। उनके अनुसार काव्य की प्रेरणा प्रवृत्तिमूलक है। कर्म की प्रेरणा और लोकहित की साधना इसके माध्यम से सम्भव है। 'कला कला के लिए' वाले सिद्धान्त में शुक्ल की रुचि नहीं है। उन्होंने काव्य को मात्र मनोरंजन अथवा विलास का साधन नहीं माना बल्कि 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' निबन्ध में स्पष्ट रूप से कहते हैं, 'काव्य को हम जीवन से अलग नहीं कर सकते। उसे हम जीवन पर मार्मिक प्रभाव डालने वाली वस्तु मानते हैं। 'कला कला के लिए' वाली बात को जीर्ण होकर मरे बहुत दिन हुए एक क्या कई क्रोचे उसे फिर जिला नहीं सकते।' कविता को वे खुशामद तथा दिल बहलाने का माध्यम नहीं मानते इसलिए शुक्ल ने रीतिकाल की घोर श्रृंगारिकता को स्वीकार नहीं किया। स्वयं प्रवृत्तिमूलक होने के कारण उन्होंने पलायनपरक छायावादी कविताओं का विरोध किया। जीवन के प्रगतिशील तत्वों से रहित और यथार्थ जीवन से दूर की कविता उन्हें मान्य नहीं है। कल्पनावादियों को भी स्पष्ट कहा कि 'कल्पना' इस वस्तु जगत से अलग किसी अन्य अद्भुत सृष्टि की रचना नहीं करती। लोक हृदय, लोकमंगल और लोकहित की अवहेलना करने वाले साहित्य को वे साहित्य की श्रेणी से बहुत दूर मानते हैं। लोक जीवन और कर्म सौन्दर्य का सामंजस्य प्रतिपादित करने की दृष्टि से शुक्ल ने भारतीय प्रबन्ध काव्यों और उनमें अभिव्यक्त लोक जीवनबद्ध प्रेम पद्धति की प्रशंसा की है। 'लोभ और प्रीति' में प्रवृत्तिमूलक प्रबन्ध काव्यों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं, 'भारतीय प्रबन्ध काव्यों की मूल प्रवृत्ति लोकजीवन से संश्लिष्ट प्रेम के वर्णन की ओर रही। आदि-कवि ने राम और सीता के प्रेम का विकास मिथिला या अयोध्या के महलों और बगीचों में न दिखाकर दण्डकारण्य के विस्तृत कर्म क्षेत्र के बीच दिखाया है। उनका प्रेम जीवन यात्रा के मार्ग में माधुर्य फैलाने वाला है, उससे अलग किसी कोने में चौकड़ी या आहें भरने वाला नहीं। इसी लोक

जीवनबद्ध प्रेम को वे श्रेयस्कर मानते हैं जहाँ वैयक्तिक प्रेम सामाजिक उपयोगिता एवं लोकमंगल का माध्यम बनता है। वे उस प्रेम का मान करते हैं जो संजीवन रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन पथ को रमणीय और सुन्दर बना देता है और लोक के लिए प्रशस्त करता है।

शुक्ल जी कोरी भावुकता का विरोध करते हैं। वे उस कृत्रिम सभ्यता के विरुद्ध हैं जिसमें सच्ची सहानुभूति का अभाव है और घड़ियाली आँसू बहाने वालों की भीड़ है। भावों के इस बनावटीपन के कारण 'घृणा' शब्द वैर या क्रोध को छिपाने का काम दे जाता है। वैज्ञानिक जीवन के हस्तक्षेप को स्वीकार करते हुए भी वे जीवन-मूल्यों की उदात्त भावभूमि से आँखे नहीं चुराते। 'लोभ और प्रीति' निबन्ध में टकाधर्म पर चुटकी लेते हुए यथार्थ का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करके देश की विसंगतियों को उघाड़ते हैं, 'आजकल तो बहुत-सी बातें धातु के टीकरों पर ठहरा दी गई हैं। पैसे से राजसम्मान की प्राप्ति, विद्या की प्राप्ति और न्याय की प्राप्ति होती है जिनके पास कुछ रुपया है, बड़े-बड़े विद्यालयों में अपने लड़कों को भेज सकते हैं, न्यायालयों में फीस देकर अपने मुकद्दमें दाखिल कर सकते हैं और महँगे वकील-बैरिस्टर करके बढ़िया खासा निर्णय करा सकते हैं, अत्यन्त भीरु और कायर होकर बहादुर कहला सकते हैं। राजधर्म, आचार्यधर्म, वीरधर्म सब पर सोने का पानी फिर गया, सब टकाधर्म हो गए।' इस कृत्रिम सभ्यता पर 'श्रद्धा-भक्ति' निबन्ध में भी चोट की गई है, 'कुछ दिनों पहले की सभ्यता मनुष्य जीवन को देवतुल्य बनाने में थी, अब मर्कटतुल्य और मत्स्यतुल्य बनाने में समझी जाने लगी है।' इसी प्रकार गेरूआ वस्त्र लपेटे, धर्म का डंका पीटने वालों, देश हितैषियों का लम्बा चोगा पहनने वालों, देशोद्धार का ढोंग रचने वालों, झूठी श्रद्धा करने और कराने वालों, नाना विध के प्रपंचों को सभा सोसायटियों के मंचों से उठाने वाले वाग्वीरों की बौद्धिक आधार पर भर्त्सना की गई है। काशी के ज्योतिषी, कानपुर के बनिए और दलाल, कचहरियों के अमले और मुख्तार आदि धन के पुजारियों को आड़े हाथों शुक्ल ने लिया है। अपने स्वरूप वैचित्र्य और अपने अभाव की रक्षा और प्रतिष्ठा के लिए मनुष्य के भावों से खेलने वाले शासकों और धर्माचार्यों, सभी प्रकार के ढोंगियों और अनाचारियों के प्रति उनके मन में अतिशय रोष भाव है।

2.5 सारांश

इस विवेचन से स्पष्ट है कि शुक्ल के निबन्धों में भाव एवं बुद्धि का सामंजस्य है। भाव उनके निबन्धों को सरस बनाते हैं तो बुद्धि के द्वारा वे लोकहित का माध्यम बनते हैं। मुख्य बात यह है कि घूम फिर कर शुक्ल के निबन्ध लोकमंगल एवं कर्मप्रेरणा से आ जुड़ते हैं। इस क्रम में वैषम्यों पर कुठाराघात करने से वे नहीं चूकते साथ ही जीवन का सुन्दर रूप जहाँ भी उन्हें मिलता है वहीं उनका हृदय रमता दिखाई देता है। यहीं पर यह भी ध्यान देने की बात है कि मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों में उनके वैयक्तिक जीवनानुभवों से प्राप्त निष्कर्ष समाहित हैं और साहित्यशास्त्र एवं विषयप्रधान निबन्धों में बौद्धिकता का आग्रह है। कुल मिलाकर इतना तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि साहित्य को लोक कल्याण का माध्यम बनाने की पैरवी शुक्ल ने प्रमुखता के साथ की। भावों और विशुद्ध मनोरंजन की चौहद्दी से उन्होंने साहित्य को बाहर निकालकर उससे क्षात्र धर्म की भाँति कर्म सौन्दर्य का पाठ पढ़ाया। यह उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती

है। विषय एवं विषयीगत धारणा के आधार पर नापें तो हम कह सकते हैं कि मौलिकता की दृष्टि से शुक्ल के निबन्ध यदि विषयीगत हैं तो साहित्यिक एवं व्यावहारिक धरातल पर विषय प्रधान हैं। लेखकीय उद्देश्य, प्रवृत्ति, शैली तथा पाठकीय उपलब्धि की दृष्टि से ये निबन्ध विषय प्रधान हैं। उन्होंने अपनी बौद्धिक यात्रा में पढ़ने वाले कुछ चिन्तनमनन प्रधान विषयों को चुना और विवेचित किया। उनका उद्देश्य नवीन विषयों से पाठकीय चेतना को मात्र परिचित कराना नहीं वरन् उसकी बुद्धि को जागृत करना भी रहा है अतः विवेचन में बौद्धिकता एवं मार्मिकता दोनों का समभाव है। अनेक स्थलों पर वैयक्तिक जीवनानुभवों से जुड़कर भी ये निबन्ध विषय से जुड़े रहते हैं। कह सकते हैं कि भावों या मनोविकारों का परिचय शुक्ल के निबन्धों को विषयीगत बनाता है और साथ ही इनका सामाजिक व्यावहारिक जुड़ाव एवं उत्तरदायित्व इन्हें विषय प्रधानता की कोटि में खड़ा करता है। चिर-परिचित मान्यताओं के बहिष्कार एवं नवीन मौलिक उद्भावनाओं की सर्जना में शुक्ल का बौद्धिक आग्रह खुलकर सामने आता है और परम्परागत साहित्यिक विरासत एवं अनुग्रह उन्हें भावुक बनाते हैं। इस प्रकार विश्लेषण की दृष्टि से उनके निबन्धों को खुले रूप में हम विषय प्रधान अथवा विषयी प्रधान कह सकते हैं। निश्चित रूप से एक ओर भावप्रधानता और बुद्धिप्रधानता के खेमे में विभाजित कर सकते हैं किन्तु साथ ही यह भी देखना होगा कि ये दोनों स्थितियाँ शुक्ल के यहाँ परस्पर पूरक हैं और इनसे मिलकर ही उनके निबन्ध पूर्णता को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आलोचना की दृष्टि से शुक्ल के निबन्ध भाव या बुद्धि प्रधान कहे जा सकते हैं किन्तु इनका पूर्ण आस्वादन हृदय एवं बुद्धि के सम्पूर्ण आयामों को साथ रख कर ही किया जा सकता है।

2.6 कठिन शब्द

अभिव्यंजनावाद, प्रवृत्तिमूलक, माधुर्य, संकोच, उत्साह, न्यायधीश, धरातल, लोकमंगल, सौभाग्यवश, प्रतिकार ।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. आचार्य शुक्ल के निबन्ध भावप्रधान है या बुद्धि प्रधान, विस्तारपूर्वक विचार करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. भाव तत्व एवं बुद्धि तत्व पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल के निबन्धों पर विचार करें ।

.....

.....

.....

.....
.....
.....
प्र3. 'आचार्य शुक्ल' के निबन्धों में निबन्ध के भाव एवं बुद्धि तत्व के महत्त्व को सिद्ध करें ।
.....
.....
.....
.....

2.8 सन्दर्भ ग्रन्था / पुस्तकें

1. साहित्य-अनुभूति और विवेचन – संसार चन्द्र
2. गद्य विधाएं – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. श्रेष्ठ निबन्ध – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त
6. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्रगुप्त
7. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ. हरदयाल
8. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ. ज्ञानेन्द्र वर्मा
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : निबन्ध यात्रा – डॉ. कृष्णदेव झारी
10. आचार्य शुक्ल – जयनाथ नलिन
11. रामचन्द्र शुक्ल – डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
12. निबन्ध : सिद्धान्त और प्रयोग – डॉ. हरिहर नाथ द्विवेदी

.....

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों की भाषा शैली

- 3.0 रूपरेखा
- 3.1 उद्देश्य
- 3.2 प्रस्तावना
- 3.3 आचार्य शुक्ल की भाषा शैली
 - 3.3.1 वैज्ञानिक भाषा पद्धति
 - 3.3.2 उदाहरण शैली
 - 3.3.3 साहित्यिक भावना प्रधान भाषा शैली
- 3.4 शुक्लीय निबन्ध शैली के विविध रूप
- 3.5 भाषा शैली की सीमाएं
- 3.6 भाषा शैली का महत्त्व
- 3.7 सारांश
- 3.8 कठिन शब्द
- 3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

- भाषा का अर्थ जान सकेंगे ।
- शैली का अर्थ जान सकेंगे ।
- निबन्ध में भाषा एवं शैली का महत्त्व जान सकेंगे ।
- निबन्ध की शैली के विविध रूपों से परिचित हो सकेंगे ।

3.2 प्रस्तावना

निबन्ध गद्य की कसौटी है और शैली निबन्ध की कसौटी है। कविता के कला-पक्ष की बात करते हुए हम काव्य शिल्प की चर्चा करते हैं शिल्प अर्थात् काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से काव्य के कला-पक्ष की जांच पड़ताल करना। किन्तु गद्य में, विशेष रूप से निबन्ध में शिल्प का स्थान 'शैली' ले लेती है क्योंकि शैली निबन्धकार के व्यक्तित्व तथा आत्म-पक्ष के साथ जुड़ी होती है और व्यक्तित्व की अभिव्यंजना की गुंजाइश निबन्ध में रहती है। अतः निबन्ध के कला पक्ष की चर्चा करते हुए भाषा तत्त्व अर्थात् भाषा शैली का महत्त्व बढ़ जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के गिने-चुने शैली निर्माताओं में प्रमुख स्थान रखते हैं। हिन्दी गद्य की भाषा और शैली के निर्माण में भी आलोचना की तरह, उनका सर्वाधिक महत्त्व है। हिन्दी गद्य की अभिव्यंजना शक्ति को उन्होंने खूब बढ़ाया है। हास्य-व्यंग्य, मुहावरे और लाक्षणिक प्रयोगों के अतिरिक्त मूर्तिमत्ता उनकी शैली की एक बड़ी विशेषता है। शुक्ल जी साहित्य की विशेषता अर्थ ग्रहण कराने मात्र में नहीं मानते। वे बिम्ब ग्रहण कराना भाषा की मुख्य विशेषता मानते रहे। भाषा की कसावट का सर्वोत्तम उदाहरण शुक्ल के अतिरिक्त कहीं और पाना दुष्प्रायः है। शुक्ल जी ही हिन्दी की प्रौढ़ साहित्यिक व्यंजना-प्रधान समासयुक्त विवेचनात्मक वैयक्तिक शैली के जनक हैं। हिन्दी निबन्धकारों में यदि किसी सफल रचनाकार का नाम लेना हो, जिसने भाषा की समस्त शैलियों – विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक शैली और उसके विभिन्न रूपों निगमन, आगमन, आलोचनात्मक, तर्क प्रधान, तुलनात्मक, निर्णयात्मक आदि के साथ भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, हास्य-व्यंग्यात्मक, आलंकारिक शैली का निर्वाह समान अधिकार के साथ किया है तो वहां पर आचार्य शुक्ल को ही लिया जा सकता है।

शुक्ल जी के निबन्ध हिन्दी गद्य के चरम विकास के द्योतक हैं। निबन्ध में भाषा पूर्णतः व्याकरण-सम्मत होती है, जो भाषा की शक्ति और उसके स्वरूप की निश्चितता और प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक है। निबन्ध विभिन्न प्रकार के विचारात्मक ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी विषयों पर लिखे जाते हैं। अतः सभी विषयों से सम्बन्धित, प्रचलित और पारिभाषिक शब्दों का समावेश निबन्धों में हो जाता है। अतः भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का पूर्ण विकास निबन्धों में ही होता है। किसी गद्य

लेखक की भाषा शैली का पूर्ण विकास उसके निबन्धों से ही ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए शुक्ल जी के गद्य को लें तो गद्य शैली का, भाषा का प्रौढ़ रूप जैसा उनके निबन्धों में मिलता है वह उनके अनुवादों अथवा 'साहित्य का इतिहास' में नहीं झलक पाता।

3.3 आचार्य शुक्ल की भाषा शैली

आचार्य शुक्ल से पहले हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में व्यक्तित्व व्यंजक विविधताएँ प्रचुर मात्रा में सामने आती रहीं, किन्तु चिन्तन की वैज्ञानिक प्रकृति से अनुशासित भाषा शैली का आविर्भाव नहीं हो पाया था। इस अभाव की पूर्ति शुक्ल जी ने की। शुक्ल की भाषा शैली मुख्यतः वैज्ञानिक विवेचन की भाषा पद्धति है। इसीलिए तर्क योजना उनके निबन्धों को प्रारम्भ से अन्त तक और शब्द चयन से वाक्य रचना तक, विचारों के क्रम से लेकर अनुच्छेदों के नियोजन तक समाहित रहती है। इस तर्क योजना के साथ भाषा का संघटन देखते ही बनता है।

3.3.1 वैज्ञानिक भाषा पद्धति

शुक्ल जी की शैली वैज्ञानिक विवेचन की शैली है। उसमें कलात्मक सौन्दर्य पैदा करने की कोशिश नहीं की गयी है। तथापि यह शैली एक जैसी नहीं वरन् निबन्ध की सापेक्षता के अनुरूप परिवर्तित होती गयी है। 'करुणा', क्रोध' आदि निबन्धों में शैली का आनन्द कम है, सूक्ष्म तर्क योजना में रसास्वाद की प्रक्रिया छिपी हुई है। यहाँ आवेशपूर्ण एवं आलंकारिक शैली का प्रयोग पतझड़ में बसन्त की तरह है। जबकि 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य,' काव्य में रहस्यवाद' आदि काव्य-शास्त्रीय निबन्धों में यह पद्धति प्रवाहपूर्ण है। इनमें एक सरस वक्ता की आवेशपूर्ण शैली का आनन्द मिलता है। वैज्ञानिक भाषा पद्धति का ब्यौरेबार वर्णन इस प्रकार है:-

(क) उपयुक्त शब्द नियोजन अर्थात् शब्द पर्याय संभव नहीं : वैज्ञानिक भाषा पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता प्रसंगानुकूल उपयुक्त शब्द की खोज और उसका प्रयोग है। उदाहरण के लिए क्रोध' निबन्ध का पहला वाक्य है, "क्रोध दुःख के चेतन कारण के साक्षात्कार या अनुमान से उत्पन्न होता है।" इस वाक्य में प्रसंगानुकूल उपयुक्ततम् शब्दों का यथास्थान प्रयोग हुआ है। यहाँ के 'चेतन' स्थान पर सजीव, सज्ञान आदि में से अन्य शब्द उपयुक्त नहीं है। इसी प्रकार 'साक्षात्कार' के स्थान पर देखने या दर्शन जैसे शब्द पर्याय नहीं रखे जा सकते। इसी प्रकार यदि 'अनुमान' के स्थान पर अन्दाज़ शब्द से वाक्य सौन्दर्य ही खण्डित हो जायेगा, क्योंकि कार्य कारण, अनुमान शब्द न्याय अथवा तर्कशास्त्र से सम्बन्धित शब्द है। कार्य से कारण का अनुमान और कारण से कार्य का अनुमान दर्शन, अथवा तर्कशास्त्र में सामान्य बात है। उपयुक्ततम् शब्द खोजी होने के कारण शुक्ल के निबन्धों के सम्पादित कार्य में शब्द पर्याय नहीं रखे जा सकते।

(ख) नवीन शब्द निर्माण : शुक्ल जी ने अपने निबन्धों द्वारा हिन्दी गद्य शैली के विविध रूप, रंगों, भंगिमाओं का विकास किया और शब्द भण्डार की श्रीवृद्धि की। एक ओर, उन्होंने प्राचीन आर्य संस्कृति से प्राप्त पुराने

शब्दों को सहेजा और दूसरी ओर, पश्चिमी साहित्य और काव्यशास्त्र के पुराने-नये शब्दों का हिन्दी में अनुवाद कर पारिभाषिक हिन्दी शब्दों का निर्माण कर भाषा को समृद्ध किया। संस्कृत साहित्य से सादृश्य विधान, विभाजन व्यापार, अन्योन्याश्रय, रागात्मिका वृत्ति, अज्ञान कुलशील, ब्रह्मानन्द सहोदरत्व, काव्यानुभूति, रसानुभूति, परोक्ष सत्ता, संलक्ष्यक्रम अनुमान, असंलक्ष्यक्रम अनुमान, स्मृत्याभास, भावोद्रेक, भावोन्मेष, रूप सौन्दर्य, कर्म सौन्दर्य, भाव-सौन्दर्य, सर्वात्मा, अंशात्मा, ग्रहण शक्ति और उद्भाविका शक्ति जैसे अप्रचलित शब्दों का जीर्णोद्धार किया। अंग्रेजी के अनुवाद रूप में हिन्दी पर्याय खोजे जैसे स्वच्छन्दतावाद (Romanticism), आदर्शात्मक (Idealistic), गत्यात्मक (Dynamic), अभिव्यंजनावाद (Expressionism), रूढ़ि (Convention), इतिवृत्तात्मक (Matter of Fact), प्रभाववादी समीक्षा (Impressionist criticism), स्वयंप्रकाश ज्ञान (Intuition), निरपेक्ष (Absolute), ज्ञानातीत (Transcendental), सर्ववाद (Panthesim), प्रभाववाद (Suppressionism) आदि अनुवादित शब्दों ने हिन्दी भाषा के पारिभाषिक कोश को व्यापक बनाया। इनके अतिरिक्त शुक्ल जी ने मूल शब्द से संयुक्त शब्द बनाकर वैयक्तिक पारिभाषिक धरातल पर उन्हें स्पष्ट करते हुए निबन्धों में प्रतिष्ठा दिलाई। जैसे 'लोक' शब्द से उन्होंने अनेक संयुक्त शब्द बनाये – लोकमंगल, लोकधर्म, लोकऋण, लोक-मर्यादा, लोक-कल्याण, लोक-रंजन, लोकबद्ध, लोक-व्यवहार, लोकानुकरण, लोकोन्मुख, लोक संग्रह इत्यादि।

- (ग) शब्दों का मितव्ययी प्रयोग : शुक्ल जी की एक बहुत बड़ी विशेषता सारगर्भित वाक्य रचने की क्षमता है। इन वाक्यों में जीवन के अनुभवों और चिन्तन का सुदीर्घ फल संचित होता है। ऐसे वाक्य साधारण वाक्यों के बीच में आकर चमत्कार उत्पन्न करते हैं, 'यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है।' अथवा 'जिन्हें यह कहने में संकोच नहीं कि हम बड़े संकोची हैं, उनमें संकोच कहां?' अथवा 'राम का नाता सारे संसार से नाता जोड़ता है, तोड़ता नहीं। अथवा 'कर्ता से बढ़कर कर्म का स्मारक दूसरा नहीं है।' जैसे वाक्य शक्ति रूप में कम शब्दों के माध्यम से बहुत बड़ी बात कह देते हैं।
- (घ) शृंखलाबद्ध वाक्य विधान : इस प्रकार के गद्य विधान में प्रत्येक वाक्य अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती वाक्य के साथ तर्कपूर्ण ढंग से जुड़ा होता है। वाक्यों के इस क्रम परिवर्तन की गुंजाइश नहीं होती। इसी प्रकार अनुच्छेदों का क्रम भी शृंखलाबद्ध होता है। 'भाव या मनोविकार' निबन्ध की प्रारम्भिक पंक्तियों से इसे समझा जा सकता है, 'अनुभूति के द्वन्द्व ही से प्राणी के जीवन का आरम्भ होता है। उच्च प्राणी मनुष्य भी केवल एक जोड़ी अनुभूति लेकर इस संसार में आता है। बच्चे के छोटे से हृदय में पहले सुख और दुःख की सामान्य अनुभूति भरने के लिए जगह होती है। पेट का भरा या खाली रहना ही ऐसी अनुभूति के लिए पर्याप्त होता है। जीवन के आरम्भ में इन्हीं दोनों के चिह्न हँसना और रोना देखे जाते हैं पर ये अनुभूतियाँ बिल्कुल सामान्य रूप में रहती हैं, विशेष-विशेष विषयों की ओर विशेष-विशेष रूपों में ज्ञानपूर्वक उन्मुख नहीं होतीं।

उपर्युक्त अनुच्छेद में यदि पहले-दूसरे वाक्य का ही आपस में क्रम बदल दिया जाए तो वैज्ञानिक तर्क प्रणाली का पूरा क्रम ही भंग हो जाएगा क्योंकि यहाँ तर्क की निगमनात्मक पद्धति का प्रयोग होने से वाक्यों का क्रम ऊपर से नीचे उतरने की ओर है। पहले वाक्य में सार्वभौमिक सत्य (प्राणी जीवन का आरम्भ द्वन्द्व से) है और दूसरे वाक्य में सीमित सत्य (उच्च प्राणी मनुष्य भी) का वर्णन है। तीसरे वाक्य में और भी सीमित सत्य (बच्चे का छोटा सा हृदय) दूसरे वाक्य की अपेक्षा है। इस प्रकार पहले समस्त प्राणी अर्थात् जीव और पशु-पक्षी, फिर उच्च प्राणी अर्थात् मनुष्य और फिर बच्चा और उसमें भी छोटा सा हृदय इस प्रकार एक क्रम में वाक्य रखे गये हैं। चौथे वाक्य में सुख-दुःख की सामान्य अनुभूति और पांचवे में हँसना और रोना रूप में विशिष्ट अनुभूति की चर्चा है। इस प्रकार शुक्ल के वाक्य विधान में क्रम परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

3.3.2 उदाहरण शैली

वैज्ञानिक विवेचन प्रणाली के अर्न्तगत शुक्ल जी के निबन्धों की एक विशेषता यह भी है कि वे उदाहरण या दृष्टान्त देकर अपनी बात समझाते हैं। इनके प्रयोग से विचार सहजता और स्पष्टता के साथ समझ आ जाते हैं और भाषा में जीवन्तता, सादगी और चित्रात्मकता आ जाती है। 'क्रोध' शीर्षक निबन्ध में पहले शुक्ल ने क्रोध की परिभाषा दी है फिर बताया कि क्रोध के लिए पहुँचने वाले दुःख और उसके कारण का परिज्ञान आवश्यक है, इसके बिना क्रोध उत्पन्न नहीं होता। अपनी बात कहने के बाद वे इसे और ज्यादा स्पष्ट करने के लिए उदाहरण देकर समझाने का प्रयास करते हैं, 'तीन-चार महीने के बच्चे को कोई हाथ उठाकर मार दे, तो उसने हाथ उठाते तो देखा है पर अपनी पीड़ा और उस हाथ उठाने से क्या सम्बन्ध है, यह वह नहीं जानता है। अतः वह केवल रोकर अपना दुःख प्रकट कर देता है।' इस उदाहरण के आधार पर अगले वाक्य में उन्होंने सूत्र शैली में निष्कर्ष निकाला कि, 'दुःख के कारण की स्पष्ट धारणा के बिना क्रोध का उदय नहीं होता। वैज्ञानिक भाषा पद्धति में तर्क, बुद्धि और विचार आधार रूप में रहता है जबकि साहित्यिकता का आधार भावुकता और भाव हैं। हालाँकि वैज्ञानिकता भी साहित्य में, साहित्यिक पुट से अलग नहीं होती।

3.3.3 साहित्यिक, भावना प्रधान भाषा शैली

हृदय और बुद्धि की यात्रा में शुक्ल के निबन्धों की भाषा शैली विभिन्न मनोभावों के अनुरूप अपने रूप में परिवर्तन करती हुई भावानुगामिनी बनी है। हास्य और विनोद की मनोदशा में शुक्ल अर्थ-सौष्टव से आगे बढ़कर शब्दों की सजावट अथवा शब्द चमत्कार का मिश्रण कर देते हैं। 'लोभ और प्रीति' के सिलसिले में 'सबकी टकटकी टके की ओर लग गई', 'लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी हो गई, उपासक सब पत्थर के हो गए।' ध्यान देने की बात है कि यह शब्दगत सजावट मात्र चमत्कार हेतु नहीं है बल्कि अर्थ सौष्टव को अधिक स्पष्ट करने और चमकाने वाली है।

आवेश की मनोदशा में शुक्ल एक ही प्रकार के छोटे-छोटे वाक्यों की झड़ी-सी लगा देते हैं। 'लोभ और प्रीति' से इस भावदशा को समझा जा सकता है, 'जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं सुनते कि चातक कहाँ चिल्लाता है, जो आँख भर यह भी नहीं देखते कि आम प्रणय-सौरभपूर्ण मंजरियों से कैसे लदे हुए हैं, जो यह भी नहीं जानते कि किसानों के झोंपड़ों के भीतर क्या हो रहा है, वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता बताकर देशप्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि, 'भाइयों! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा ?

उत्साह मूलक क्रोध की दशा में उनके वाक्य सीधे लेकिन हथौड़े की सी चोट करने वाले होते हैं। 'श्रद्धा-भक्ति' निबन्ध में वे गुणशील सायहीन नकली श्रद्धेयों पर कुपित होकर जनता से कहते हैं, 'इनसे समाज को हर घड़ी सावधान रहना चाहिए। इन्हें सामाजिक दण्ड दे देने के लिए उसे सदा सन्नद्ध रहना चाहिए। ये अनेक रूपों में दिखाई पड़ते हैं। कोई गेरुआ वस्त्र लपेटे धर्म का डंका पीटता दिखाई देता है, कोई देश हितैषिता का लम्बा चोगा पहने देशोद्धार की पुकार करता पाया जाता है।' हल्के क्रोध की स्थिति में वे उपहास-व्यंग्य करते हैं, 'श्रद्धाकर्षण की विद्या की भी आजकल खूब उन्नति हुई है। आश्चर्य नहीं कि इसके लिए कुछ दिनों में एक अलग विद्यालय खुले।' जबकि अतिशय क्रोध की तिलमिलाहट में वे कटु व्यंग्य बाण छोड़ते हैं, "लोभियों! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय-निग्रह, तुम्हारी मानापमान-समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है, तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय विग्रहणीय है। तुम धन्य हो! तुम्हें धिक्कार है।" अथवा 'हितोपदेश के गदहे ने तो बाघ की खाल ओढ़ी थी, पर वे लोग बाघ की बोली बोल लेते हैं।'

इस प्रकार शुक्ल के निबन्धों की भाषा-पद्धति वैज्ञानिक होने के साथ विभिन्न मनोभावों के अनुकूल विभिन्न शैलीगत भंगिमाएँ धारण कर लेती है। भाषा परिवर्तन का यह स्वरूप उनके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

3.4 शुक्लीय निबन्ध शैली के विविध रूप

निबन्ध के विषयानुरूप निबन्ध की शैली भी अनेक हो सकती हैं। शुक्ल के निबन्ध हृदय और मस्तिष्क पर एकदम प्रभाव डालते हैं उसका एक बहुत बड़ा कारण शैली की, विषयानुरूप स्वीकृति है। यहाँ तक कि अंग्रेज़ी की तर्ज़ पर उन्होंने सांकेतिक चिह्नों से भी परहेज नहीं किया। भावावेग अथवा विचार प्रवाह के कारण उन्होंने ऐसे प्रयोग किए हैं।

सांकेतिक भाषा शैली के अन्तर्गत विभिन्न निर्देशक चिह्नों जैसे उद्धरण चिह्नों, कोष्ठक, डैश इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। शुक्ल के निर्देशक चिह्नों का अनुकरण नयी कविता में बखूबी देखा जा सकता है जहाँ संवेदना की अतिशयता से इनका प्रयोग कवियों ने किया है। शुक्ल

में यह शैली कई रूपों में मिलती है अर्द्धविराम अर्थात् कॉमा(ए) का प्रयोग करने से प्रत्येक वाक्य के लिए अलग से क्रिया का इस्तेमाल नहीं करना पड़ता दूसरे, कथन की व्याप्ति भी सिद्ध होती है, 'अनन्त रूपों में प्रकृति हमारे सामने आती है – कहीं मधुर, सुसज्जित या सुन्दर रूपों में, कहीं उग्र, कराल या भयंकर रूपों में।' यहाँ कॉमा प्रयोग से प्रत्येक अर्द्धविराम के साथ "रूप में प्रकृति हमारे सामने आती है" बार-बार कहने की आवश्यकता नहीं है। कहीं कोष्ठक का सीधे प्रयोग नहीं करके डैश (-) का प्रयोग हुआ है, 'करुणा अपना बीज अपने आलम्बन या पात्र में नहीं फैंकती अर्थात् जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करने वाले पर भी करुणा नहीं करता – जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है- बल्कि कृतज्ञ होता है अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है।' यह दोनों (-) के बीच का कथन' जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है' दरअसल कोष्ठक में भी रखा जा सकता था। कहीं-कहीं पर सीधे कोष्ठक () प्रयोग किया गया है। कोष्ठक वास्तव में एक प्रकार की तात्पर्य शैली है कथन पर दवाब देने के लिए उसी भाव की नियोजना दूसरी शब्दावली में की जाती है, 'वे कभी तो अपने आप विषयों को मन के सामने लाते हैं, कभी किसी विषय के आने पर उससे सम्बन्ध (पूर्वापर वा कार्य-कारण सम्बन्ध) रखने वाले और बहुत से विषय उपस्थित करते हैं।' (करुणा निबन्ध) अंग्रेजी प्रभावित तर्ज पर शुक्ल ने संयुक्त वाक्यों का 'कन्जेक्शन' की भाँति प्रयोग किया है।

समुच्चय बोधक शैली के अन्तर्गत यदि तो अर्थात् कार्यकारण परम्परा के प्रयोग से भाषा में चुस्ती, प्रवाह और प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। 'कविता क्या है' से उदाहरण लेकर इस प्रयोग को समझा जा सकता है, 'यदि कलरव करते हुए पक्षियों के आनन्दोत्सव में उसने योग न दिया, यदि खिले हुए फूलों को देखकर वह न खिला, यदि सुन्दर रूप सामने पाकर भीतरी कुरूपता का विसर्जन उसने न किया, यदि दीन-दुःखी का आर्तनाद सुन वह न पसीजा, यदि अनाथों और अबलाओं पर अत्याचार होते देख क्रोध से न तिलमिलाया, यदि किसी बेढ़ब और विनोदपूर्ण दृश्य या उक्ति पर न हँसा तो उसके जीवन में रह क्या गया ?'

इनके अतिरिक्त शुक्ल के निबन्धों में निबन्ध शैली के चिरपरिचित रूप भी मिलते हैं।

विवेचनात्मक शैली

शुक्ल के विचारात्मक निबन्धों की प्रमुख शैली विवेचनात्मक है। शब्दगत और अर्थगत दृष्टि से यह दो प्रकार की होती है-एक व्यास शैली और दूसरी समास शैली। समास के भी दो प्रकार शब्दगत और अर्थगत समास हैं। शुक्ल के निबन्धों की विवेचनात्मक शैली समास प्रधान है जो अर्थगत समास के रूप में मिलती है। शब्द समास शैली का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत कम किया गया है। दो शब्दों अथवा कहीं तीन शब्दों से अधिक का शब्द समास प्रयोग उनमें नहीं मिलता। 'नाद सौन्दर्य', 'लोक संग्रह', 'सिद्धान्त वाक्य', 'लोक-जीवन-बद्ध' जैसे स्वाभाविक शब्द समास भाषा में सौष्ठव और गाम्भीर्य लाते हैं। थोड़े में बहुत अधिक कहने की प्रकृति के कारण शुक्ल के निबन्धों में अर्थ समास अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। व्यंजनाशक्ति पर आधारित कला-कौशल उनके

निबन्धों का एक बड़ा गुण है जिसके रहते उन्होंने अनेक अर्थगर्भित मार्मिक उक्तियों का निर्माण किया है, 'जो किसी के लिए नहीं जीते, उनका जीना-न-जीना बराबर है।' लोभियों के लिए कहते हैं, 'न उन्हें मक्खी चूसने में घृणा होती है और न रक्त चूसने में दया।' विवेचनात्मक शैली का प्रधान रूप व्याख्यात्मक शैली है जिसके अन्तर्गत आगमन, निगमन और आगमन-निगमन-तीनों शैलियों का प्रयोग शुक्ल ने किया है।

आगमन शैली

इसके माध्यम से निबन्धकार अपनी बात को खूब समझा-समझाकर कहता है और इसके लिए वह उदाहरण, उद्धरण, तुलना, व्याख्या, अर्थात् तात्पर्य यह है कि, इससे सिद्ध हुआ, सारांश है कि इत्यादि का प्रयोग करते हुए अपने कथन को सूत्रबद्ध करने की कोशिश करता है। आगमन शैली में विशेष-विशेष सत्यों के आधार पर सामान्य सत्य की स्थापना की जाती है। इसमें वाक्य विधान सुश्रुंखलित होता है। 'कविता क्या है' में इसी सामान्य सत्य अथवा सामान्य धर्म की स्थापना हुई है, 'इससे सिद्ध हुआ कि साधारणीकरण आलम्बनत्व धर्म का होता है। व्यक्ति तो विशेष ही रहता है, पर उसमें प्रतिष्ठा ऐसे सामान्य धर्म की रहती है जिसके साक्षात्कार से सब श्रोताओं या पाठकों के मन में एक ही भाव का उदय थोड़ा-बहुत होता है।' विषय स्पष्टीकरण के पश्चात् इस प्रकार स्थापना की गई है, 'सारांश यह है कि केवल साधारणत्व की रुचि सच्ची सहृदयता की पहचान नहीं है।' इसी प्रकार 'लोभ और प्रीति' में पहले विश्वामित्र के उदाहरण और व्याख्या से स्पष्ट करके अन्त में स्थापना करते हैं, 'अन्य का त्याग अनन्य और सच्चे लोभ की पहचान है।'

निगमन शैली

इसमें सामान्य से विशेष सत्य की स्थापना होती है। आगमन शैली में निष्कर्ष अथवा सूत्र स्थापना बाद में होती है जबकि निगमन शैली में पहले और बाद में उदाहरण, व्याख्या से स्पष्टीकरण होता है। 'ईर्ष्या' निबन्ध के अनेक अनुच्छेदों का आरम्भ सूत्र स्थापना से ही हुआ है जैसे, 'ईर्ष्या का दुःख प्रायः निष्फल ही जाता है', 'ईर्ष्या में प्रयत्नोत्पादिनी शक्ति बहुत कम होती है', 'ईर्ष्या अत्यन्त लज्जावती वृत्ति'। इन सूत्रों से स्पष्ट है कि अनुच्छेद का आरम्भ आकर्षक उद्भावना से हुआ है और पाठक में उत्सुकता जगाने की शक्ति लिए है।

निगमन-आगमन संयुक्त शैली

'कविता क्या है?' निबन्ध में दोनों शैलियों का संयुक्त उदाहरण मिलता है। पहले निगमन शैली के आधार पर सूत्र स्थापना है, 'भावों के विषयों और उनके द्वारा प्रेरित व्यापारों में जटिलता आने पर भी उनका सम्बन्ध मूल विषयों और मूल व्यापारों से भीतर-भीतर बना है और बराबर बना रहेगा।' इस बात की व्याख्या, उदाहरणों आदि से समझाकर फिर आगमन शैली के अनुसार सारांश अथवा निष्कर्ष प्रतिपादित करते हैं, 'सारांश यह है कि काव्य के लिए अनेक स्थलों पर हमें भावों

के विषयों के मूल और आदिम रूपों तक जाना होगा, जो मूर्त और गोचर होंगे। भावों के अमूर्त विषयों की तह में भी मूर्त और गोचर रूप छिपे मिलेंगे। इस प्रकार की संयुक्त शैली में शुक्ल विषय को भाँति-भाँति से समझाने का प्रयत्न करते हैं। विवेचनात्मक-व्याख्यात्मक की विविधता, शैली की प्रवृत्ति पर भी आधारित होती है जैसे तर्क के आधार पर तर्कपूर्ण शैली। इसी भाँति अनेक शैलियाँ शुक्लीय निबन्धों में मिलती हैं।

उद्बोधनात्मक शैली में नैतिकता की दृष्टि से आदेश-निर्देश दिए जाते हैं। जैसे-‘यूरोप उसे छोड़ रहा है, छोड़ दे, यह आवश्यक नहीं कि हम हर एक कदम उसी के पीछे-पीछे हैं।’ साहित्य-आलोचना सम्बन्धी निबन्धों में निर्णयात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। इसके द्वारा किसी मत की स्थापना की जाती है अथवा निर्णय दिया जाता है। ‘श्रद्धा-भक्ति’ से ऐसे उदाहरण लिए जा सकते हैं, ‘संसार में मनुष्य मात्र की समान वृत्ति कभी नहीं हो सकती।’ ‘क्षात्र-धर्म पालन की आवश्यकता संसार में सब दिन बनी रहेगी।’ ‘श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।’ किन्हीं दो दृष्टिकोणों, विचारों, सम्प्रदायों के बीच तुलना करते हुए तुलनात्मक शैली का प्रयोग ‘काव्य में रहस्यवाद’ निबन्ध में मिलता है, ‘अव्यक्त ब्रह्म की जिज्ञासा और व्यक्त, सगुण ईश्वर या भगवान के सान्निध्य की अभिलाषा, यही भारतीय पद्धति है। अव्यक्त, अभौतिक और अज्ञात की अभिलाषा यह बिलकुल विदेशी कल्पना है और मज़हबी रुकावटों के कारण पैगम्बरी मत मानने वाले देशों में की गई है।’ इसी प्रकार ‘श्रद्धा-भक्ति’ में देखें, ‘प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार’, यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है।’ समीक्षात्मक निबन्धों में तर्कपूर्ण शैली का निर्वाह हुआ है। विभिन्न सिद्धान्तों और विचारों का खण्डन-मण्डन करने के लिए शुक्ल तर्क देते हैं। इस दृष्टि से ‘कविता क्या है’ में महत्त्वपूर्ण तर्क योजना मिलती है, ‘उक्ति की वही तक की वचन भंगी या वक्रता के सम्बन्ध में हमसे कुन्तल जी का ‘वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्’ मानते बनता है जहाँ तक कि वह भावानुमोदित हो या किसी मार्मिक अन्तर्वृत्ति से सम्बन्ध रखती हो, उसके आगे नहीं।’ इस प्रकार विवेचनात्मक-व्याख्यात्मक शैली की जितनी व्यापकता शुक्ल में है, उतनी किसी निबन्धकार में नहीं है। शुक्ल ने भाषा को गढ़ने के क्रम में सभी क्षेत्रों से भाषा प्रयोग किए हैं और निबन्ध की गद्य शैली को समर्थ एवं सुदृढ़ किया है।

मुहावरे

साहित्य अथवा काव्य का अर्थ मात्र-ग्रहण से नहीं बल्कि बिम्ब ग्रहण से पूर्ण होता है और यही काव्य का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शुक्ल जी ने चित्रात्मक, बिम्बात्मक और मुहावरेदार शैली का प्रयोग किया है क्योंकि मुहावरों में पूरी संस्कृति का अर्थ समाया होता है। ‘ईर्ष्या’ निबन्ध में वास्तविकता और सापेक्षिकता के प्रसंग में मुहावरा प्रयोग है, ‘सापेक्षिकता नज़र का खेल है, और कुछ नहीं। यदि हमें पेट भर अन्न नहीं मिलता है, तो लोग समझते हैं कि हम अपने किसी साथी से अच्छे या धनी हैं, तो लोगों की इस धारणा से हमारा पेट नहीं भर सकता।’ गंभीर विवेचन हेतु भी मुहावरों का प्रयोग हुआ है, ‘जो किसी के लिए नहीं जीते उनका जीना-न जीना बराबर है।’ एक ही वाक्य में एकाधिक मुहावरों का प्रयोग भी

मिलता है, ' किसी की अच्छी चीज़ को देखते ही जिनके मुंह में पानी आ जाता है वे बराबर खरी-खोटी सुना करते हैं।

तद्भव शब्दावली

सिद्धान्त निरूपण एवं गंभीर विवेचन में शुक्ल जी ने संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का इस्तेमाल किया है। लेकिन मनोभावों सम्बन्धी निबन्धों में तद्भव शब्दों को अपनाया गया है। तद्भव का प्रयोग शुक्ल जी धड़ल्ले से करते हैं— गड़बड़झाला, सेंटमेंत, निकम्मा, धड़ाधड़, बेधड़क, खटकना, मोल, लत, ढब इत्यादि। भाषा को समर्थ करने के क्रम में उन्होंने विदेशी शब्दों जैसे उर्दू शब्दावली से भी परहेज़ नहीं किया।

उर्दू शब्दावली

शब्द के प्रति उदारता बरतने वाले शुक्ल जी ने विषय-निर्वाह और शैली सौष्ठव की दृष्टि से उर्दू-फारसी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। 'उत्साह' निबन्ध में एक वाक्य उर्दू शब्दों से भरा पड़ा है, 'सलाम-साधक लोग हाकिमों से मुलाकात करने के पहले अर्दलियों से उनका मिजाज पूछ लिया करते हैं।' इसके अलावा बोलचाल की उर्दू के सैंकड़ों शब्द मिलते हैं— अलबत्ता, कद्र, कायम, खेल-तमाशा, शौक, मज़ाक, फरमान, फरमाइश, दस्तावेज, दास्तान, हकीकत, गुंजाइश, गनीमत, अक्ल, महफिल, नकल, सखुन, कदम आदि। शब्द चाहे अंग्रेज़ी हो या संस्कृत, तद्भव हो या उर्दू शुक्ल ने इनका प्रयोग विषयगत गाम्भीर्य और विवेचन हेतु ही किया है।

लाक्षणिक शैली

बिम्ब ग्रहण को महत्त्व देने के कारण शुक्ल जी के लिए लाक्षणिक भाषा का प्रयोग जरूरी बन पड़ा है। उनके निबन्धों में लाक्षणिक शब्दावली से युक्त मार्मिक उक्तियाँ बड़ी प्रभावशाली हैं। 'लज्जा और ग्लानि' में यह प्रयोग देखते ही बनता है, 'लक्ष्मी की मूर्ति धातुमयी हो गयी, उपासक सब पत्थर के हो गए। आजकल तो बहुत सी बातें धातु के ठीकरों पर ठहरा दी गई हैं। सब धर्म, आचार्य धर्म, वीर धर्म सब पर सोने का पानी फिर गया, सब टकाधर्म हो गए।' एक ही शब्द के विभिन्न लाक्षणिक प्रयोगों को इस निबन्ध में देखा जा सकता है, 'आँख खुलने पर जो आँख खोलने वालों को ही देख सकें, उनकी आँख की दुरुस्ती में बहुत कसर समझनी चाहिए।' तुकबन्दी वाले शब्दों से संवरी लक्षणा शक्ति को भी देख सकते हैं, 'लोक व्यवहार की दृष्टि से अनिष्ट से बचने के लिए इष्ट यही है कि हम दुष्टों का हाथ थामें और धृष्टों का मुँह-उनकी वन्दना करके हम पार नहीं पा सकते। इधर हम हाथ जोड़ेंगे, उधर वे हाथ छोड़ेंगे।' इसी प्रकार पद रचना में लाक्षणिकता मिलती है जैसे — 'ठठरियों पर माँस चढ़ना', 'शब्द जबान पर नाचना', 'टेढी-सीधी सुनना' आदि।

आलंकारिक शैली

चमत्कार के स्थान पर स्वाभाविकता के रूप में शुक्ल के निबन्ध अलंकारों से परहेज़ नहीं करते। उपमा और रूपक जैसे सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग उनमें मिलता है। 'भाव या मनोविकार' में रसायन विज्ञान से लिए गए उपमान का सटीक प्रयोग किया गया है, 'मनोविकारों या भावों की अनुभूतियाँ परस्पर तथा सुख या दुःख की मूल अनुभूति से ऐसी ही भिन्न होती हैं जैसे रासायनिक मिश्रण परस्पर तथा अपने संयोजक द्रव्यों से भिन्न होते हैं।' इसी प्रकार भूगोल से वर्षा की प्रक्रिया को लेकर उसे सामाजिक प्रक्रिया पर उपमा और रूपक के माध्यम से सुन्दर रूप में श्रद्धा भक्ति में उद्घाटित किया है, 'कर्त्ता अपने सत्कर्म द्वारा एक विस्तृत क्षेत्र में मनुष्य की सद्वृत्तियों के आकर्षण का एक शक्ति केन्द्र हो जाता है। जिस समाज में किसी ऐसे ज्योतिषमान शक्ति केन्द्र का उदय होता है उस समाज में भिन्न हृदयों से शुभ भावनाएँ मेघखण्डों के समान उठकर तथा एक और एक साथ अग्रसर होने के कारण परस्पर मिलकर इतनी घनी हो जाती हैं कि उनकी घटा-सी उमड़ पड़ती है और मंगल की ऐसी वर्षा होती है कि सारे दुःख और क्लेश बह जाते हैं। अर्थ के उत्कर्ष में सहायक छोटे-छोटे अनुप्रास उन्हें प्रिय हैं, 'करुण क्रोध', 'कष्ट-क्रन्दन', 'प्रफुल्ल-प्रसून-प्रसार', 'शीतल सुख स्पर्श', 'तामस ताप' आदि। एक ही अवतरण में उपमा, रूपक, लक्षणा, व्यंजना का संलिप्त विधान श्रद्धा-भक्ति, निबन्ध में मिलता है, 'इन्हें जो कुछ हम श्रद्धावश देते हैं, वह ठीक समाज के दुरुस्त पेट में जाता है, जहाँ से रस, रूप में उसका संचार अंग-अंग में होता है। इसके विरुद्ध स्वार्थियों, अन्यायियों आदि को जो कुछ दिया जाता है वह समाज के अंग में उसी प्रकार नहीं लगता जिस प्रकार अतिसार या संग्रहणी वाले को खिलाया हुआ अन्न।' इतनी विपुल मात्रा में भाषा शैली समृद्ध होने के कारण शुक्ल पर भाषागत दुर्बोधता परिणामस्वरूप चिन्तन विषयक जटिलता को लेकर आरोप भी लगे हैं।

3.5 भाषा शैली की सीमाएँ

भाषा सम्बन्धी नवीनता और विषयों के साथ-साथ परिवर्तित शैली के कारण शुक्ल के निबन्धों में शैलीगत जटिलता विद्वान् पाठक एवं आलोचक महसूस करते हैं। जैसे कि कहीं समास बहुलता से अर्थ स्पष्ट नहीं होता, 'व्यक्ति सम्बन्ध हीन सिद्धान्त मार्ग निश्चयात्मिका बुद्धि को चाहे व्यक्त हो पर प्रवर्तक मन को अव्यक्त रहते हैं'। वहीं वाक्य विन्यास अस्पष्ट हो गया है, 'निन्दा का भय लज्जा नहीं है, भय ही है, और बातों का जिनमें लज्जा भी एक है।' कहीं-कहीं वाक्य अतिशय दीर्घ हो गए हैं, 'कोई बात ऐसी है जिसके प्रकट हो जाने के कारण हम दूसरों को अच्छे नहीं लगते हैं, यह जानकर अपने को, और प्रकट होने पर हम अच्छे न लगेंगे यह समझकर उस बात को, थोड़े-बहुत यत्न से उनके दृष्टिपथ से दूर करके भी जब हम समय पर अपना बचाव कर सकते हैं, यही नहीं, अपने व्यवधान कौशल पर सदा बचते चले जाने की आशा तक - चाहे वह झूठी ही क्यों न हो - कर सकते हैं, तब हमारा केवल यह जानना या समझना सदा सुधार की इच्छा ही उत्पन्न करेगा, कैसे कहा जा सकता है?' ऐसे लम्बे वाक्य अपनी लम्बाई और दूसरे निर्देश चिह्नों के कारण सरलता से समझ नहीं आते।

3.6 भाषा शैली का महत्त्व

उपर्युक्त छुट-पुट दोषों के बावजूद शुक्ल के निबन्धों की भाषा शैली हिन्दी गद्य के सर्वांगीण विकास की कहानी कहती है। उन्होंने गद्य शैली की अभिव्यंजना सामर्थ्य को बढ़ाता कला कौशल, शैलीगत प्रौढ़ता, गंभीर, कसावटमयी, संश्लिष्ट शैली का सफल प्रयोग किया, विविध शैलियों का सार्थक समन्वय किया। इतनी समस्त, समर्थ, परिष्कृत, प्रौढ़, विशुद्ध और सुष्ठु भाषा का रूप और कहाँ मिलेगा जिसमें व्यावहारिकता, वैज्ञानिकता और साहित्यिकता का रूप एक साथ बना रहता है। लगता है एक-एक शब्द में निबन्धकार ने स्वयं को साकार किया है। इतनी समर्थ, स्पष्ट और रोचक शैली में ऐसे गंभीर विषयों का सूक्ष्म प्रतिपादन किसी अन्य निबन्धकार ने किया हो, इसमें संदेह है। **Style is the man himself** की उक्ति उनके निबन्धों में चरितार्थ होती है। उनके गम्भीर व्यक्तित्व के अनुकूल ही उनकी गद्य शैली भी गंभीर है। पारिभाषिक शब्द-निर्माण, स्वनिर्मित, नवनिर्मित शब्द, बिम्ब ग्राह्यता, हास्य-व्यंग्य, सांकेतिक भाषा शैली का काव्यमय प्रयोग, अर्थ-गर्भित सूत्र शब्दावली आदि उनकी गद्य शैली की ऐसी विशेषताएँ हैं जो उन्हें हिन्दी गद्य साहित्य का सर्व समर्थ निबन्धकार सिद्ध करती हैं।

3.7 सारांश

डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में कहें तो शुक्ल जी ने अपने निबन्धों द्वारा हिन्दी के काव्यशास्त्र को एक नया मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक आधार दिया। इस आधार पर उन्होंने साहित्य की प्रगति विरोधी धाराओं का खण्डन किया और संस्कृत-हिन्दी की प्रगतिशील परम्परा का समर्थन किया। उनकी शैली तार्किक विवेचन के लिए उपयुक्त होने के साथ आवश्यकतानुसार आवेशपूर्ण और आलंकारिक भी हैं और उसकी एक विशेषता जीवन का संचित अनुभव प्रकट करने वाली वाक्यावली है। शब्द चयन में उर्दू के प्रचलित शब्दों से उन्हें परहेज नहीं है। साहित्यिक भाषा प्रवृत्ति और विवेचनात्मक-वैज्ञानिक शैली के सभी रूपों का निर्वाह उन्होंने किया है। हिन्दी निबन्ध जगत में व्यक्तित्व व्यंजक विविधताएँ प्रचुर मात्रा में सामने आती रहीं किन्तु चिन्तन की वैज्ञानिकता से अनुशासित भाषा शैली के अभाव की पूर्ति शुक्ल के निबन्धों में आ कर ही हो सकी। इस प्रकार उनके निबन्धों में एक सुघड़ शिल्पी, मूर्तिकार, शब्दों के चित्तरे की सी छवि होती दिखाई देती है। जिसका उदाहरण सैंकड़ों कोशिशों के बावजूद कोई दूसरा लेखक नहीं कर सका। शुक्ल अपना कीर्तिमान स्वयं है। शुक्ल में आ कर निबन्ध शैली का चरम और पूर्ण विकास सम्भव हुआ।

3.8 कठिन शब्द

अभिव्यंजना, मूर्तिमता, समासयुक्त, व्यंग्यात्मक, आगमन, निगमन, तर्क, निर्णयात्मक, निर्वाह, समावेश, समीक्षा, ब्रह्मनन्द, भावोद्रेक ।

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. आचार्य शुक्ल के निबन्धों की भाषा शैली पर सविस्तार प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. भाषा शैली का सविस्तार परिचय देते हुए शुक्ल के निबन्धों पर प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र3. शुक्ल के निबन्धों में भाषा शैली के महत्त्व पर प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. साहित्य-अनुभूति और विवेचन – संसार चन्द्र

2. गद्य विधाएं – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. श्रेष्ठ निबन्ध – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त
6. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्रगुप्त
7. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ. हरदयाल
8. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ. ज्ञानेन्द्र वर्मा
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : निबन्ध यात्रा – डॉ. कृष्णदेव झारी
10. आचार्य शुक्ल – जयनाथ नलिन
11. रामचन्द्र शुक्ल – डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
12. निबन्ध : सिद्धान्त और प्रयोग – डॉ. हरिहर नाथ द्विवेदी

.....

पाठ्यक्रम में निर्धारित शुक्ल के निबन्धों पर कथ्यगत मूल्यांकन

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 पाठ्यक्रम में निर्धारित शुक्ल के निबन्धों पर प्रश्न

4.3.1 लज्जा और ग्लानि का कथ्यगत मूल्यांकन

4.3.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था का कथ्यगत मूल्यांकन

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्द

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

4.1 उद्देश्य

- अनुभूति के दो प्रकार – सुखात्मक एवं दुःखात्मक को सूक्ष्म रूप से जान सकेंगे ।
- शुक्ल ने भावों या मनोविकारों की उत्पत्ति और विकास की समाजशास्त्रीय व्याख्या कर उन्हें समस्त मानव जीवन का प्रवर्तक कहकर जीवन के आधार रूप में प्रतिष्ठित किया।

मनोविकारों को पूरे समाज या लोक से जोड़कर उन्होंने लोकरक्षा और लोकरंजन की सारी व्यवस्था किस आधार पर की, यह जान सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना :

शुक्ल ने निबन्धों में अपनी अनुभूति का मणिकांचन संयोग करके साहित्य तथा जीवन की तत्कालीन समस्याओं को सुलझाने की प्रेरणा को निबन्धों का उत्स बनाकर रस की शास्त्र जड़ीभूत यंत्र गतिक व्याख्या को नव-जीवन तथा नए आदर्शों से प्रदीप्त कर इन निबन्धों द्वारा रस-सिद्धान्त का नवनिर्माण किया है। इन्होंने मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों द्वारा आधुनिक मनोविज्ञान, अपनी निजी अनुभूति तथा चिंतन की सहायता से रस की अधुनातन व्याख्या करने की चेष्टा की है।

4.3 पाठ्यक्रम में निर्धारित शुक्ल के निबन्धों पर प्रश्न

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबन्ध-संग्रह 'चिन्तामणि (भाग एक) सर्वप्रथम तेरह निबन्धों के संकलन रूप में 'विचारवीथी' नाम से सन् 1930 में प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् द्वितीय संस्करण के अवसर पर कुल सत्रह निबन्धों के साथ 'चिन्तामणि' (भाग एक) नाम से साहित्य जगत की अनमोल निधि के रूप में सामने आया। 'चिन्तामणि' के कुल तीन भाग प्रकाशित हुए। भाग दो में कुल तीन निबन्ध हैं - काव्य में प्राकृतिक दृश्य, काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद। इस प्रकार काव्य-समीक्षा की दृष्टि से भाग-दो महत्वपूर्ण है। भाग तीन कुल इक्कीस निबन्धों का संकलन है। सर्वाधिक चर्चित भाग एक ही हुआ क्योंकि इसके प्रारम्भिक दस निबन्धों का सरोकार शुक्ल जी ने पहली बार मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिपादित किया। हमारे पाठ्यक्रम में कुल दो निबन्ध संकलित हैं - 'लज्जा और ग्लानि' तथा 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था'।

4.3.1 लज्जा और ग्लानि का कथ्यगत मूल्यांकन

'श्रद्धा-भक्ति' निबन्ध निवृत्ति-प्रवृत्ति, कर्म सौन्दर्य की विवेचना करते हुए शुक्ल ने मनुष्य के लिए जिन जीवन मूल्यों, आदर्शों की परिकल्पना की है उसी का अगला चरण 'लज्जा और ग्लानि' निबन्ध कहा जा रहा है। यहां उन्होंने अकरणीय कर्मों से दूर रहने और तमोगुणों के त्याग के बहाने मानवीय व्यवहारों का सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है।

लज्जा की परिभाषा शुक्ल ने इस प्रकार दी है, 'दूसरों के चित्त में अपने विषय में बुरी या तुच्छ धारणा होने के निश्चय या आशंका मात्र से वृत्तियों का जो संकोच होता है- उनकी स्वच्छन्दता के विधान का जो अनुभव होता है- उसे लज्जा कहते हैं। इस प्रकार लज्जा का भाव वृत्तियों अर्थात् मानवीय क्रियाओं, चेष्टाओं और व्यवहार में संकोच (बाधा) उत्पन्न करता है। जिसके कारण मनुष्य अपना सिर ऊँचा नहीं कर पाते, मुंह तक नहीं दिखा सकते, सामने आने से कतराते

हैं, स्पष्ट कथन कहते उनकी जुबान लड़खड़ाती है। 'हम बुरे नहीं समझे जाएं' यह स्थायी भावना जितनी अधिक होगी, व्यक्ति भी उतना ही ज्यादा लज्जाशील होगा। इसके विपरीत किसी की परवाह नहीं करने वाला, 'कोई भला कहे या बुरा' हमें क्या मतलब की भावना रखने वाला व्यक्ति निर्लज्ज होता है। इस प्रकार लज्जा भाव दूसरों की धारणा या सोच के प्रति हमारे अनुमान या निश्चय से संचालित होता है।

लज्जा मानसिक व्यापार है अर्थात् हम दोषी हैं अथवा दूसरे हमें अपराधी समझते हैं यह जरूरी नहीं बल्कि मात्र संभावना से ही हम लज्जित हो जाते हैं। निन्दा का भय लज्जा नहीं है, भय ही है। निन्दा सुनने से लज्जा का वेग बढ़ जाता है कई बार निन्दा के स्थान पर प्रेम, सहिष्णुता, उपकार पाकर लज्जा का वेग इतना अधिक बढ़ जाता है कि लज्जित होकर चुल्लू भर पानी ढूँढने लगते हैं। ऐसी दशा राम-लक्ष्मण वन से लौटकर जब कैकेयी से मिलते हैं तो उसकी होती है। वृत्तियों में संकोच 'ग्लानि' के कारण आता है। शुक्ल जी के अनुसार दोनों में अंतर यह है कि लज्जा अपनी बुराई के प्रति दूसरों की बुरी धारणा पर दृष्टि रखने से आती है जबकि ग्लानि में दूसरे की धारणा जरूरी नहीं होती, 'अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता इत्यादि का एकान्त अनुभव करने से वृत्तियों में जो शैथिल्य आता है, उसे ग्लानि कहते हैं।' इसका अनुभव हृदय की सात्विक अवस्था में होता है। इस प्रकार ग्लानि अन्तःकरण की शुद्धि का माध्यम और द्योतक है अतः विपरीत मनोभाव भी व्यक्ति को उदात्त मनोभूमि पर ले जाते हैं। इसलिए शुक्ल 'विरुद्धों के सामंजस्य' में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रेम-घृणा, दया-क्रोध, लोभ-परोपकार, ईर्ष्या-करुणा जैसे सर्वथा विपरीत भाव मानव जीवन को संतुलित करते हैं। ग्लानि में दुराव-छिपाव की जगह नहीं। हम अपना मुँह नहीं दिखाकर लज्जा से बच सकते हैं किन्तु चारपाई में लिहाफ के नीचे मुँह छिपाने के बाद भी लोग ग्लानि से गल सकते हैं।

लज्जित होने के लिए प्रत्यक्ष रूप से दोष करना जरूरी नहीं है। समाज में रहते हुए हम जितना अपने कर्मों पर लज्जा का अनुभव करते हैं, उतना ही अपने सम्बन्धियों द्वारा दिए गलत काम पर अपना नाम जुड़ जाने से लज्जा आती है। किन्तु अब अपने प्रेम, प्रतिष्ठा का ह्रास देखते हैं और समाधान ढूँढने में असफल होते हैं तो ग्लानि से भर जाते हैं। राम के वनवास पर भरत की ऐसी ही दशा हुई थी। लज्जा और ग्लानि मनुष्य को उदात्त बनाने का माध्यम है क्योंकि शुक्ल के अनुसार ग्लानि सात्विक प्रकृति के लोगों को होती है। राजसी प्रवृत्ति वालों को लज्जा होती है और तामसी प्रकृति वाले निर्लज्ज होते हैं। लज्जा करने वाले तो अपनी बुराई छिपाता है, किन्तु ग्लानि से गलकर सात्विक प्रकृति वाला समाज में अपनी बुराई स्वीकार करता है। इस प्रकार बुराई से बचने वालों के लिए शुक्ल तीन मनोविकार बताते हैं। सात्विक के लिए ग्लानि, राजसी हेतु लज्जा और तामसी वृत्ति वाले भय से ही अन्तःकरण को शुद्ध कर सकते हैं। शुक्ल के अनुसार लज्जा की

आशंका भी मनुष्य को बुराई से रोकती है। यह सोचकर कि लोग हमें बुरा न समझें, लोग इच्छा होने पर भी बुरा काम करने से हिचकिचाते हैं। लज्जा के लिए ज़रूरी नहीं कि व्यक्ति वास्तव से बुराई करे बल्कि किसी बुरे के साथ अपना नाम जुड़ जाने से भी लज्जा आ सकती है। यदि कुचक्र रचकर हमारे चरित्र पर कोई आक्षेप करता है तो उसे सुनकर हमें लज्जा के साथ ग्लानि भी आ सकती है। अपने चरित्र हनन के दुष्क्र का व्यक्ति जब भेद नहीं पाता तो उसे ग्लानि होती है अर्थात् ग्लानि के साथ असमर्थता, हीनता के साथ क्रोध जुड़ा हुआ होता है।

इस निबन्ध में लज्जा के संदर्भ में संकोच भाव का विवेचन हुआ है। शुक्ल के अनुसार, 'लज्जा का हल्का रूप संकोच है जो किसी काम को करने के पहले ही होता है।' इस प्रकार लज्जा की दो अवस्थाएँ हैं— एक, किसी काम को करने से पहले वाली और दो, काम के बाद होने वाली अवस्था। काम के पहले वाली स्थिति ही संकोच है जिसका चित्रण 'कामायनी' में प्रसाद ने 'लज्जा' सर्ग में किया है। यह संकोच शील का प्रधान अंग है। संकोच एक आन्तरिक प्रतिबन्ध है जो दो प्रकार का होता है एक, विवेचनात्मक प्रतिबन्ध जो प्रयत्न साध्य होता है और दूसरा मनः प्रवृत्यात्मक जो स्वभावतः होता है पहले में बुद्धि द्वारा प्रवृत्ति जबरन रोकी जाती है किन्तु दूसरा मन का स्वाभाविक प्रवर्तन है। शुक्ल इसे ही सच्चा प्रतिबन्ध मानते हैं। संकोच का मूल आधार यह सोच है कि जो हम करने जा रहे हैं, वह कर्म दूसरों को तो बुरा नहीं लगेगा।

संकोच को शुक्ल ने दोष रूप में भी लिया है क्योंकि अतिशय संकोच-भावना कर्म से रोकती है जबकि शुक्ल तो कर्म को ज्ञानयोग और भावयोग जितना महत्व देते हैं। न जाने लोगों को कैसा लगेगा यह दोष हमें व्यवहारिक कर्म से रोकता है। इसी प्रकार अधिक डांट-फटकार से बच्चे लज्जालु बन जाते हैं। स्त्रियाँ इस डर से काम नहीं कर पाती कि कहीं पुरुषों को पता नहीं चल जाए। जबकि पुरुषों ने लज्जा में अपनी विलासिता पाई। काव्य में मुग्धा और मध्या नायिका-वर्णन कर कारण यही विलासिता और लज्जा का सहभाव है। इस प्रकार अतिशय लज्जा और संकोच अव्यावहारिक है, तो निर्लज्जता का संकोच का सम्पूर्ण अभाव भी बुरा है। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'यदि सबकी धड़क एकबारगी खुल जाए तो एक ओर छोटे मुंह से बड़ी-बड़ी बातें निकलने लगे, चार दिन के मेहमान तरह-तरह की फरमाइशें करने लगे, उंगली का सहारा पाने वाले बाँह पकड़कर खींचने लगे, दूसरी ओर बड़ों का बहुत कुछ बड़प्पन निकल जाए, गहरे साथी बहरे हो जायें या सूखा जवाब देने लगे, जो हाथ सहारा देने के लिए बढ़ते हैं वे ढकेलने लगे फिर तो भलमनसाहत का भार उठाने वाले इतने कम रह जायें कि वे उसे लेकर चल ही न सकें।' दूसरे छोर पर संकोच का सामाजिक महत्व भी बताते हैं, 'मनु की जो वृत्ति बड़ों की बात का उत्तर देने से रोकती है बार-बार किसी से कुछ मांगने से रोकती हैं, उसके न रहने से भलमनसाहत भला कहां रहेगी।' इस प्रकार संकोच शिष्टाचार और सदाचार का आधार है। कुल

मिलाकर यह निबन्ध समाज के अनुकूल-प्रतिकूल पक्षों का वैज्ञानिक विवेचन करता है वर्तमान न्याय कानून व्यवस्था को कई स्तरों पर, मनोविकारों को ध्यान में रखकर समाधान की प्रेरणा देते हुए मनुष्य और समाज के स्वस्थ बनाने की दिशा में एक कदम है।

4.3.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था का कथ्यगत मूल्यांकन

कर्म की प्रेरणा देने वाले आचार्य शुक्ल का यह निबन्ध जीवन के प्रयत्न (कर्म) पक्ष अर्थात् साधनावस्था से जुड़ा है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि ब्रह्म के तीन स्वरूपों-सत् चित् और आनन्द में से काव्य और भक्ति मार्ग में आनन्द स्वरूप को महत्त्व दिया गया। इस आनन्द की दो अवस्थाएँ होती हैं साधनावस्था और सिद्धावस्था। साधनावस्था प्रयत्न पक्ष और सिद्धावस्था उपभोग पक्ष से जुड़ी हुई है। लोक में फैली हुई दुःख की छाया को हटाने के लिए जब ब्रह्म की आनन्द कला भीषण शक्ति में परिणत होकर अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर होती है तो आनन्द की साधनावस्था का विधान होता है। आनन्द की सिद्धावस्था में आनन्दमंगल की सिद्धि के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वह सिद्ध और आविर्भूत होता है। उसके आविर्भूत होने पर जीवन में सुख, सौन्दर्य, माधुर्य, सुषमा, उल्लास, वैभव की स्थिति का विधान सहज ही हो जाता है। कुछ कवि इन दोनों स्थितियों में प्रवृत्त होते हैं, कुछ सिद्धावस्था अथवा साधनावस्था में अर्थात् एक पक्ष में प्रवृत्त होते हैं। गोस्वामी तुलसी का 'मानस' साधनावस्था का उदाहरण है। जबकि 'सूरसागर', बिहारी सतसई' सिद्धावस्था के उदाहरण हैं।

आनन्द की साधनावस्था को महत्त्व देने वाले काव्य में गत्यात्मक सौन्दर्य का चित्रण होता है क्योंकि इनमें ब्रह्म की आनन्द कला प्रारम्भ से अन्त तक मंगल का विधान करने के लिए प्रयत्नशील होती है और उसकी भीषणता, प्रचण्डता में भी मधुरता का समावेश होता है। सिद्धावस्था को महत्त्व देने वाले काव्य में स्थिर सौन्दर्य का चित्रण होता है। साधनावस्था सम्बन्धी काव्य का बीज भाव करुणा है और दूसरा भाव प्रेम है। करुणा की प्रवृत्ति रक्षा की होती है और प्रेम रंजन से सम्बन्धित है। लोकरक्षा के बाद ही लोकरंजन इष्ट है। यह प्रयत्न या साधनावस्था किस पक्ष की ओर से होनी चाहिए इसे शुक्ल जी स्पष्ट करते हैं। कर्म रावण भी करता है राम के प्रति किन्तु उसके कार्य से पाठकों का तादात्म्य नहीं होगा जबकि रावण के प्रति राम का प्रयत्न जैसे क्रोध, संहार से पाठक तादात्म्य करने में सफल होंगे। इस प्रकार लोकमंगल के साधनस्थ पक्ष कर्ता पर ध्यान देना भी ज़रूरी है। इसीलिए शुक्ल जी अत्याचारी के दमन रूप कर्म सौन्दर्य के बजाय टालस्टॉय द्वारा प्रचारित अत्याचारी के प्रति भी प्रेम और भ्रातृभाव के विरुद्ध हैं। रावण के प्रति राम के क्रोध में लोकोत्तर सौन्दर्य का कारण आत्मगौरव अथवा दाम्पत्य-प्रेम नहीं बल्कि पीड़ित मानवता के प्रति करुणा की भावना है। इस प्रकार काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेम भाव की व्यंजना में नहीं माना जा सकता जैसे कि कलाकारी मानते हैं। जब तक समाज में अच्छे-बुरे, सत्-असत्, न्याय-अन्याय,

मंगल-अमंगल का द्वन्द्व विद्यमान रहेगा तब तक काव्य में साधनावस्था की जरूरत बनी रहेगी। चरित्र का विकास करने वाले मानदण्डों की स्थापना होती रहेगी और काव्य के उत्कर्ष निर्मित करने वाले प्रतिमानों में लोकमंगल की साधनावस्था की प्रासंगिकता और अनिवार्यता बनी रहेगी। इस प्रकार शुक्ल के अर्थों में काव्य प्रयत्न, लोकमंगल, करुणा, उदात्तता का पर्याय बनकर साहित्यिक और व्यावहारिक भूमिका निभा सकता है।

4.4 सारांश

पाठ्यक्रम में निर्धारित इन निबन्धों के आधार पर तीन चीजें खास तौर पर इंगित की जा सकती हैं एक, शुक्ल जी का व्यावहारिक दृष्टिकोण, दूसरा मनोवैज्ञानिक दृष्टि और तीसरा साहित्यिक प्रतिमानों की स्थापना। 'भाव या मनोविकार' से वे आधुनिक मानव के भौतिक और आदिम रूप को स्पष्ट करते हैं और 'श्रद्धा-भक्ति', 'लज्जा-ग्लानि' से व्याख्यात्मक विवेचनात्मक शैली में मनोभावों का सूक्ष्म वैज्ञानिक अध्ययन कर एक ही स्थान पर दो भावों को समझाते चलते हैं। जबकि 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' शुद्ध रूप से साहित्यिक कोटि का निबन्ध है लेकिन प्रयत्न पक्ष से जोड़ कर शुक्ल ने कविता को भी क्षात्र-धर्म की भाँति कर्म-प्रेरणा का माध्यम बनाकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनाया है। शुक्ल ने पहली बार काव्य को 'रमणी', मनोरंजन के स्थूल पद से ऊपर उठाकर मानव की उदात्त मनोभूमि पर अधिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया और कर्म प्रेरणा का माध्यम बनाकर ज्ञानयोग, भावयोग की तरह कर्मयोग का समाकलन करते हुए साहित्यिक अवधारणा को मनोविज्ञान और व्यावहारिकता के साथ जोड़ा। ये निबन्ध, हिन्दी निबन्ध की ही नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य की अनमोल धरोहर हैं।

4.5 कठिन शब्द

लोकरंजन, साधनावस्था, तादात्म्य, भ्रातृभाव, उत्कर्ष, प्रतिमान, प्रासंगिकता, अनिवार्यता, इंगित, उदात्त, अधिष्ठित, सहवर्तियों

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. पाठ्यक्रम में निर्धारित शुक्ल के निबन्धों का कथ्यगत मूल्यांकन कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....
.....
प्र2. श्रद्धा एवं भक्ति निबंध का कथ्यगत मूल्यांकन कीजिए ।
.....
.....
.....
.....
.....

.....
.....
प्र3. काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था का कथ्यगत मूल्यांकन कीजिए ।
.....
.....
.....
.....
.....

4.7 सन्दर्भ प्रश्न / पुस्तकें :

1. साहित्य-अनुभूति और विवेचन – संसार चन्द्र
2. गद्य विधाएं – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. श्रेष्ठ निबन्ध – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना
5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त
6. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्रगुप्त
7. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ. हरदयाल
8. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ. ज्ञानेन्द्र वर्मा

9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : निबन्ध यात्रा – डॉ. कृष्णदेव झारी
10. आचार्य शुक्ल – जयनाथ नलिन
11. रामचन्द्र शुक्ल – डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
12. निबन्ध : सिद्धान्त और प्रयोग – डॉ. हरिहर नाथ द्विवेदी

.....

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताएं

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताएं

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्द

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

5.1 उद्देश्य

- हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध के सम्बन्ध में विचार जान सकेंगे ।
- द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे ।
- द्विवेदी की भारतीय संस्कृति के प्रति नितान्त निष्ठा है और वह भारतीय संस्कृति को समन्वय का विराट प्रयास मानते हैं मूलतः हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के समस्त संसार के प्रति दृष्टिकोण को जान सकेंगे ।

5.2 प्रस्तावना

आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व आधुनिक निबंध साहित्य का ही नहीं, भारतीय साहित्य का

एक विराट व्यक्तित्व है। गंगा की अविरल प्रवाहित धारा की भाँति सदा पवित्र, मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा का यह लेखक अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि, अतल स्पर्शी प्रतिभा, मार्मिक चिंतन—उदार मन एवं व्यापक मानवतावादी भावना का स्वामी है। भाषाओं में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला आदि, शास्त्रों में इतिहास, पुराण, भाषाशास्त्र, सौंदर्य—शास्त्र, मनोविज्ञान, नृत्यशास्त्र, जीव—विज्ञान, विकासवाद आदि, साहित्य में पाश्चात्य साहित्य, ज्ञान—विज्ञान, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, आदिकालीन एवं मध्यकालीन काव्य, रवीन्द्र, कालिदास का साहित्य आदि के गहन ज्ञाता द्विवेदी का व्यक्तित्व 'ज्ञान' की दृष्टि से सर्वाधिक गरिमामय कहा जायेगा। अन्य अनेक तत्वों ने इस व्यक्तित्व को और भी उज्ज्वल बनाया है। महात्मा गाँधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव उन पर काफी है। गुरुदेव ठाकुर के निकट सान्निध्य में तो वे कई दिनों तक थे। गाँधीजी के प्रति उनके मन में अपार श्रद्धा थी। केवल श्रद्धा ही नहीं थी, वे मनसा, वाचा, कर्मणा—उनके आदर्शों को मानते थे। संभवतः रवीन्द्र और गाँधी के प्रभाव ने ही उन्हें अपने जीवन और साहित्य में अत्यन्त ऋजु और सहज बना दिया है। उच्चतम मानवीय गुणों में प्रेम, दया, अहिंसा, सत्य—परायणता, सदाचरण, नैतिकता, संयम, आस्था एवं विश्वास को संभवतः उन्होंने इसीलिये सर्वोत्तम माना है। अतः आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन भारतीय साधना की दीर्घ परम्परा का वह चरम विकसित पुष्प है जिसमें एक ओर कालिदास की सहृदयता, बाणभट्ट का पाण्डित्य और कबीर की निश्छलता विद्यमान है तो दूसरी ओर उसमें कवीन्द्र—रवीन्द्र की व्यापक—सौंदर्य चेतना, महामना मालवीयजी की उदार दृष्टि और महात्मा गांधी की चारित्रिक महत्ता अपने सुरम्यरूप में विद्यमान है। वे प्राचीन और नवीन, दर्शन और विज्ञान, साहित्य और जीवन के सुन्दर समन्वय के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। निबन्धों में उनका यही व्यक्तित्व झलकता है।

5.3 आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति पर उनकी नितान्त निष्ठा है और संस्कृति तत्व की उनकी व्याख्या भी अत्यन्त व्यापक है। "मैं संस्कृति को किसी देश—विदेश की अपनी मौलिकता नहीं मानता। मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक ही सामान्य मानव संस्कृति हो सकती है।" वे संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति मानते हैं। भारतीय संस्कृति समन्वय का विराट प्रयास है। वह विभिन्न मतों, वादों, विवादों, सम्प्रदायों, धर्मों एवं प्रवृत्तियों तथा मान्यताओं में समन्वय का प्रयास करते हैं। यहाँ वे ही लोकनायक बन सके जिन्होंने समन्वय के इस विराट प्रयत्न में अपना रचनात्मक योगदान दिया। यह परम्परा इस संस्कृति में वैदिक काल से आज तक निरन्तर चलती आयी। आधुनिक युग में प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ और महात्मा गाँधी इसी परम्परा की कड़ियाँ हैं। द्विवेदी जी के मत अनुसार सारे संसार की एक सामान्य संस्कृति हो सकती है। अगर मानव परस्पर भेद—भूलकर इस एक संस्कृति का अनुयायी बन जाये तो संघर्ष के सारे कारण समाप्त हो जायेंगे। आचार्य द्विवेदी की भारतीय संस्कृति की प्राचीनता, महत्ता एवं उनकी उदार सहिष्णु वृत्ति पर जितनी श्रद्धा है, उतना ही क्षोभ उसमें व्याप्त कुसंस्कार, क्षुद्रता, भेदाभेद, अज्ञानता के लिये है। भारतीय संस्कृति में व्याप्त इन दोषों पर द्विवेदी ने कड़ी टीका—टिप्पणी की। विभिन्न निबन्धों में संस्कृति के अनेक रूपों का विशद वर्णन उन्होंने किया, पर कहीं पर भी देशभिमान की मिथ्या भावना या संस्कृति

के प्रति निराधार मोह से व्याप्त दिखाई नहीं देते उनका अध्ययन सर्वत्र गवेषणाशील तथा आस्थामूलक ही रहा। उनकी वैचारिक दृष्टि परम्पराओं की परतें भेदकर सत्य को खोज सकने में एवं उसका समाजोपयोगी रूप सामने रख सकने में सफल रही है। विभिन्न विषयों पर लिखे गये उनके निबन्धों में मूल प्रवृत्ति यही रही है।

आचार्य जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुजारी हैं। सत्य, त्याग, अहिंसा में उनकी निष्ठा है। यदि कोई वस्तु मानवता को महानाश से बचा सकती है तो वह भारतीय संस्कृति ही है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि अभारतीय वस्तु कल्याणकारी होने पर ही ग्राह्य नहीं, अपितु वे उसे अपनाने में "संकुचित दृष्टिकोण न रखने की प्रेरणा देते हैं" वे लिखते हैं - "हम व्यर्थ के इस झगड़े में पड़ जाँ कि कोई चीज कहाँ तक भारतीय या अभारतीय, आध्यात्मिक, अनाध्यात्मिक है। चीज अगर अच्छी है तो वह भारतीय हो या न हो, स्वीकार्य है, आध्यात्मिक हो या न हो, ग्राह्य है।" वे भारतीय-संस्कृति की सीमा स्पष्ट कर देते हैं कि बुरी-भली सभी वस्तुएँ जो भारतीय हैं, भारतीय संस्कृति का रूप नहीं अथवा सभी भारतीय संस्कार अच्छे ही हैं, यह भी नहीं, प्रत्युत भारतीय संस्कृति से तात्पर्य "भारतवर्ष द्वारा अधिगत और साक्षात् कृत अविरोधी धर्म ही है।" भारतवर्ष ने एशिया और यूरोप के देशों को अपनी धर्म साधना की उत्तम वस्तुएँ दान दी हैं। उसने अहिंसा और मैत्री का संदेश दिया है, क्षुद्र दुनियावी स्वार्थों की उपेक्षा करके विशाल आध्यात्मिक अनुभूतियों का उपदेश दिया है।

भारतीय संस्कृति विश्वजनीन मानवीय भावनाओं से परिचालित है। उसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना निहित है और यदि समस्त संसार कभी एक हुआ, सभी की एक सामान्य संस्कृति हुई तो उसका एक ही आधार होगा 'मनुष्यता'। इसी 'मनुष्यता' के स्वर का गान भारतीय संस्कृति ने किया है, जिसमें व्यक्ति का नहीं, जाति का नहीं अपितु समस्त संसार का हित निहित है। "धर्म मनुष्य से त्याग की आशा रखता है, परन्तु जिस त्याग से गौरव की अनुभूति नहीं होती, वह धर्म नहीं कहा जा सकता।" परन्तु हमारा धर्म 'जियो और जीने दो' की भावना को परिव्याप्त करता है। ये बातें आचार्य जी के चिन्तन का अंग बन गई हैं। अस्तु, उनकी धारणा है कि भारतीय संस्कृति ने ही समस्त मानवता को एक स्तर पर लाकर खड़ा किया है और भविष्य में भी ला सकती है।

प्राचीन संस्कृति में श्रद्धा एवं आस्था रखने के साथ-साथ वर्तमान में होने वाले आविष्कारों एवं विचारों में होने वाले परिवर्तनों को भी द्विवेदी जी ग्राह्य मानते हैं। यदि वे मानवता का कल्याण करने में सहायक सिद्ध हों। वे लिखते हैं-"पुरानी सड़ी रूढ़ियों का मैं पक्षपाती नहीं हूँ, परन्तु संयम और निष्ठा पुरानी रूढ़ियाँ नहीं हैं। वे मनुष्य के दीर्घ आयास से प्राप्त गुण हैं और दीर्घ आयास से ही पाये जाते हैं। इनके प्रति विद्रोह प्रगति नहीं है।" जहां वे प्राचीन को नवीनता के आलोक में त्याज्य नहीं मानते वहाँ यह भी स्वीकार करते हैं कि स्थिरता एवं जड़ता अभिशाप है। जीवन की

सार्थकता इसी में है कि हम नित्य प्रति आगे बढ़ते रहें।

भारतीय संस्कृति एवं प्राचीन इतिहास के प्रति द्विवेदी जी के मन में असीम आस्था एवं ममता है और वे इसे व्यक्त करने के लिए अवसर निकाल लिया करते हैं। उनके विचार सर्वदा गवेषणा के बल से पुष्ट दिखाई देते हैं। उन्होंने अच्छे तत्त्व को कहीं से भी ग्रहण करने के लिए इतनी उत्सुकता व्यक्त की है। आचार्य द्विवेदी जी अतीत को अपने भविष्य निर्माण हेतु आधारशिला के रूप में अपनाने के पक्ष में हैं "अगर अतीत, भविष्य के निर्माण में सहायक न हो तो उसका वृथा मोह ढोने से लाभ? उनके शब्दों में यदि हमारे समूचे प्राक्तन तत्वों का ज्ञान हमारे भविष्य के निर्माण में सहायक नहीं होता तो बेकार है।"

आचार्य द्विवेदी भारतीय संस्कृति के वास्तविक रूप से अपरिचित नहीं हैं। वे उसे किसी सीमा रेखा में बंधा नहीं मानते और न ही उसे किसी जाति विशेष की उपज या धर्म एवं सम्प्रदाय की उपज ही मानते हैं। वे उसे किसी स्थल और काल विशेष की सीमाओं से भी मुक्त एवं बहुत ही व्यापक मानते हैं। उनका विचार है कि इस भारतीय महा-जन समुद्र में न जाने आज तक कितनी जातियाँ, कितने धर्म, सम्प्रदाय आ-आ कर मिल गए हैं और इन समस्त विचारधाराओं, आस्थाओं, विश्वासों, धर्मों ने मिलकर इस संस्कृति का निर्माण किया है। और उसी से अपने को पुष्ट किया है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता समन्वयवाद है— "रविन्द्रनाथ ने इस भारतवर्ष को महामानव समुद्र कहा है। विचित्र देश है, यहाँ असुर आए, आर्य आए, शक आए, हूण आए, नाग आए, यक्ष आए, गंधर्व आए— न जाने कितनी मानव जातियाँ यहाँ आईं और आज के भारतवर्ष को बनाने में हाथ लगा गयीं। जिसे हम हिन्दू-रीति-नीति कहते हैं वह अनेक आर्य और आर्यतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है।" आचार्य द्विवेदी संस्कृति की मिथ्या भावनाओं के समर्थक कभी नहीं रहे। वे तो उनके विनाश के पक्ष में हैं। 'अशोक के फूल' निबन्ध में वे लिखते हैं —"संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो जड़िमा है, उसमें से कितना भाग तुम्हारे कुष्ठ नृत्य से ध्वस्त हो जाएगा, कौन जानता है" साहित्य में युग की छाया पड़ना सहज स्वाभाविक है। जाने-अनजाने में युग अपना चित्रण साहित्यकार से करवाता है। द्विवेदी जी की रचना में भी युग के कुछ चित्र उनके प्रगतिवादी विचारों के पोषक विचारों के रूप में देखे जा सकते हैं। प्रगतिवादी विचारधारा ने सामन्तवादी भावना को कभी भी प्रश्रय नहीं दिया, उसका विरोध किया है और समाजवादी अथवा साम्यवादी विचारधारा का समर्थन किया है। 'अशोक के फूल' में लेखक के अशोक वृक्ष एवं मदनोत्सव को मध्यकालीन सामन्ती सभ्यता का परिचायक मानते हुए उसके मिट जाने पर सन्तोष ही माना है। 'अशोक का वृक्ष जितना ही मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल सामन्ती-सभ्यता की परिष्कृत रूचि का ही प्रतीक जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के संसार कर्णों को खाकर बड़ी हुई थी आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, वह क्या ऐसी ही बनी रहेगी ? सम्राटों और सामन्तों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था वह लुप्त

हो गई, धर्माचारियों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महाधर्म समझा था वह समाप्त हो गया, मध्य युग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस राशि उमड़ी थी वह वाष्प की भाँति उड़ गई, तो क्या मध्य युग के कंकाल में खिला हुआ व्यावसायिक युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा? सब बदलेगा, सब विकृत होगा – सब नवीन बनेगा।”

द्विवेदी जी मानवतावादी कलाकार हैं। वे मानते हैं कि साहित्यकार के समक्ष बड़ा प्रश्न आदर्श मानवता के उद्धार एवं उन्नयन का है। साहित्य मात्र वैयक्तिक अनुभूतियों का अभिव्यक्तिकरण नहीं, प्रत्युत समूची सामाजिक चेतना का अनुकरण है। मनुष्य की शक्ति पर द्विवेदी जी की अगाध आस्था है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि मनुष्य अनुदिन सुख, शान्ति और समृद्धि की ओर बढ़ता जाएगा। ‘अशोक के फूल’ निबन्ध में मनुष्य की अदम्य, अनुपमेय शक्ति के प्रति प्रगाढ़ आस्था व्यक्त करते हुये लिखते हैं—“मुझे मानव जाति की दुर्दम-निर्मम धारा के हजारों वर्षों का रूप साफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है। वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती-बहाती वह जीवनधारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पायी है। हमारे सामने समाज का जो रूप है वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बाद की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा। वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब कुछ हजम करने के बाद भी पवित्र है।”

मानवता को विभाजित करने वाली दुष्प्रवृत्तियों की कटु निंदा द्विवेदी जी ने की है। दूषित अर्थनीति, सामाजिक-वैषम्य आदि पर उन्होंने गंभीर चिंता व्यक्त की। द्विवेदी जी अपनी हार्दिक भावना व्यक्त करते हुए लिखते हैं—“मैं बराबर सोचता आ रहा हूँ कि क्या ऐसा कोई उपाय नहीं हो सकता कि समाज से पैसे का राज खत्म हो जाये। हमारे सब बड़े प्रयत्न इस एक चट्टान से टकराकर चूर हो जाते हैं। क्या कोई ऐसी व्यवस्था हो सकती है कि जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने मतलब भर का पैसा पा जाए और उससे अधिक पा सकने का कोई उपाय ही न हो।” जाति-भेद से उत्पन्न सामाजिक अव्यवस्था से वे चिंतित दिखाई पड़ते हैं, —“भारतमाता का जयजयकार वस्तुतः इन तहों (जातिभेद आदि) को नष्ट कर देने का संकल्प है, संभवतः बहुत थोड़े लोग ही यह बात महसूस करते हैं। परन्तु जाति-भेद की कृत्रिम तहों को नष्ट कर देना कोई आसान काम नहीं।” द्विवेदी जी का समस्त साहित्य मानव हित की कामना से प्रेरित है। श्री शिवनाथ जी ने उनके मानववाद के विषय में उचित ही लिखा है— “उनका मानववाद उपनिषदों का मानववाद है, रवीन्द्रनाथ का मानववाद है, जो मानव समाज में किसी प्रकार का भेद या वर्ग मानकर नहीं चलता, जो मानव कहने से सभी वर्गों के मानव को ग्रहण करता है। उनकी मानवता मानव समाज में जहाँ भी उत्पीड़न देखती है, ढुलक पड़ने की पक्षपातिनी है, क्योंकि मानव-मानव के मध्य संचरित होने वाली एक ही आत्मा पर उनका विश्वास है, यह आत्मा आर्थिक दृष्टि से किए गए उच्च वर्ग में भी है, मध्य वर्ग में भी है, और निम्न वर्ग में भी है।”

डॉ. द्विवेदी ने जहाँ एक ओर मानवता के गीत गाए हैं वहाँ दूसरी ओर उनमें राष्ट्रीय-भावना भी कम नहीं। वे भारतवासियों में राष्ट्रीय-भावना का संचार कर देना चाहते हैं। यह ठीक है कि हमें स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई है परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि साहित्यकारों का कर्तव्य समाप्त हो गया है। साहित्य का लक्ष्य केवल वागविलास की साधना नहीं होना चाहिए, अपितु उसे मनुष्यता का उन्नयन करना है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हम देश की अग्रगति में सहायता तो पहुँचाएंगे ही नहीं, अपने प्रति देशवासियों की उपेक्षा और अवज्ञा के भाव को दृढ़ बना देंगे। वे भारतवासियों एवं साहित्यकारों को सचेत करते हैं— 'राजनैतिक पराधीनता बड़ी बुरी वस्तु है। वह मनुष्य को जीवन यात्रा में अग्रसर होने वाली सुविधाओं से वंचित कर देती है। हमने इस पराधीनता की जंजीरे तोड़ दी हैं। लेकिन सुविधाओं को पा लेना ही बड़ी बात नहीं, प्राप्त सुविधाओं को मनुष्य मात्र के मंगल के लिए नियोजित कर सकना ही बड़ी बात है।'

वे स्पष्ट करते हैं कि हमें भाषा सम्बन्धी छोटे-छोटे झगड़ों में न पड़कर राष्ट्र के उत्थान एवं मानव के मंगल की बात सोचनी चाहिए। उनके मतानुसार 'भारतवर्ष पराधीनता के जाल से मुक्त हो गया है। हमें इस पुराने राष्ट्र के अनेक पुर्जे दुरस्त करने पड़ेंगे। अनेक जंजाल साफ करने होंगे। प्रत्येक क्षेत्र में नव-निर्माण का व्रत लेना होगा। व्यर्थ के भाषा-सम्बन्धी झगड़े हमारे राष्ट्र की उन्नति में बाधक सिद्ध होंगे। उनका दृष्टिकोण इन पंक्तियों में स्पष्ट है— 'मेरी अल्प-बुद्धि में तो यही सूझता है कि समाज के स्तरों के लिए अलग-अलग ढंग की भाषा होगी, नाना उद्देश्यों की सिद्धि के लिए नाना भाँति के प्रयत्न करने होंगे।' अस्तु, आचार्य जी साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित करते हैं कि, 'हमारे नेताओं की सुझाई हुई योजनाओं के कार्यान्वित होने में कई बाधाएँ हैं।' उन सभी का समाधान करना हमारा परम कर्तव्य है।

प्रकृति के सौन्दर्य ने सबको अभिभूत किया, परन्तु ज्ञान की गरिमा, मानवता की अभिव्यक्ति और संस्कृति के इतिहास के संदर्भ में प्रकृति के सौन्दर्य का चित्रण करने वाले समर्थ साहित्यकार केवल डॉ. द्विवेदी ही हैं। प्रकृति के सौन्दर्य में लेखक को विस्मृत कर देने की शक्ति नहीं है, प्रकृति लेखक को सारगर्भित तथ्य संकलन में सहायता देकर ही अभिभूत कर सकती है। प्रकृति का विशिष्ट रूप, आम फिर बौरा गये, शिरीष के फूल, अशोक के फूल, वसन्त आ गया है, कुटज, साहित्य में हिमालय की परम्परा, देवदारु, आदि निबन्धों में बड़े सहज रूप में चित्रित किया गया है—

"आम फिर बौरा गये" शीर्षक निबन्ध में डॉ. द्विवेदी जी ने एक साधारण "लोकोक्ति" की चर्चा की है — "बचपन में सुना था कि बसन्त पंचमी के पहले अगर आम्रमंजरी दिख जाए तो उसे हथेली में रगड़ लेना चाहिए। क्योंकि ऐसी हथेली साल भर तक बिच्छू के जहर को आसानी से उतार देती है।" इस छोटी सी लोकोक्ति के संदर्भ में डॉ. द्विवेदी ने प्राचीन काल में विविध जातियों के संघर्ष, भारतीय पुराण के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रवृत्ति, मानव की श्रेष्ठता, आधुनिक समस्याएँ और उनके समाधान की आशा, प्राकृतिक वस्तुओं की व्यावहारिक उपयोगिता आदि अनेकानेक गंभीर समस्याओं को उठाया है और समाधान करते हुए "आशावादी" दृष्टि का परिचय दिया है। प्रकृति का रूप विधाता की देन

है परन्तु उसकी व्याख्या मानव बुद्धि का क्षेत्र है "मनुष्य प्रकृति को अनुकूल बना लेने वाला अद्भुत प्राणी है। यह विशाल विश्व आश्चर्यजनक है, पर इसको करतलगत करने के लिए जूझने वाला यह मनुष्य और भी आश्चर्यजनक है। आम्रमंजरी उसी अचरज का संदेश लेकर आयी है।" इतना ही नहीं आम्रमंजरी को भावोद्दीपन का केन्द्र न मानकर डॉ. द्विवेदी ने उसे "अन्नपूर्णा" का प्रसाद माना है। यह कवि-कल्पना को जीवन की तुला पर तौलने का प्रयत्न है।

आम्रमंजरी के समान "शिरीष का फूल" भी डॉ. द्विवेदी के अन्तर को कम आन्दोलित नहीं करता है। "शिरीष" की प्राकृतिक विशेषता का डॉ. द्विवेदी मानवीकरण करते हैं "जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मंत्र प्रचार करता है।"

अवधूत वह है जो राग-द्वेष, लोभ-मोह, आकर्षण-विकर्षण से परे हो। शिरीष "अवधूत" इसलिए है कि उमस, वर्षा, ठंडक सबमें वह निर्विकार खड़ा है। द्विवेदी जी मान लेते हैं कि "फूल हो या पेड़", वह अपने आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अंगुली है। वह इशारा है इसलिए "शिरीष" का फक्कड़, मस्त, अनासक्त रूप डॉ. द्विवेदी के मन में कबीर, गाँधी, कालिदास आदि की स्मृति जगाता है। "कालिदास महान् थे क्योंकि वे अनासक्त रह सके थे। हमारे देश के ऊपर से जो यह मार-काट, अग्निदाह, लूटपाट, खून-खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों? मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों सम्भव हुआ? क्योंकि शिरीष भी अवधूत है और अपने देश का वह बूढ़ा भी अवधूत था।" प्रकृति न केवल सौन्दर्य-सृष्टि करती है बल्कि मानव-समाज का जीवन्त इतिहास भी उपस्थित करती है। "अशोक के फूल" मानव के इसी जीवन्त इतिहास से पाठक का परिचय कराते प्रतीत होते हैं। विश्व की प्रत्येक वस्तु का अपना इतिहास है जो उसके उत्थान-पतन को सूचित करता है। "इतिहास" का महत्त्व और भी बढ़ जाता है जब वस्तु के साथ-साथ संस्कृति के उत्थान-पतन का इतिहास जुड़ जाता है। "अशोक" का इतिहास भारत की धार्मिक संस्कृति के उत्थान-पतन के साथ संयुक्त होकर अपना महत्त्व प्रदर्शित करता है। अशोक के पुष्पों का आगम, कालिदास द्वारा दी गई प्रतिष्ठा, इस्लामी सभ्यता के कारण महत्त्व की समाप्ति तथा कालान्तर में एक "निफूले" पेड़ को अशोक कहा जाना डॉ. द्विवेदी को खटकता है। डॉ. द्विवेदी उदास हो जाते हैं। उस "निफूले" पेड़ की मस्ती देखकर और यह उदासी और भी बढ़ जाती है दुनिया की स्वार्थपरता के कारण। परन्तु पुनः मानव की दुर्दम्य जिजीविषा उन्हें आशान्वित करती है और वे सोचते हैं—"पंडिताई भी एक बोझ है जितनी ही भारी होती है उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्था में उदास भी नहीं करती। कहाँ अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती से झूम रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे - अपने ढंग से। मैं भी ले सकता हूँ पर अपने ढंग से।"

प्रत्येक ऋतु का अपना अलग अलग महत्त्व होता है परन्तु आशावादी दृष्टि रखने वाले डॉ. द्विवेदी को बसन्त विशेष प्रिय है बसन्त का आगमन और महत्त्व दोनों ही विवेच्य हैं। वर्ष के कुछ विशेष महीनों को बसन्त कहा जाता है परन्तु डॉ. द्विवेदी बसन्तागम के लिए किसी निश्चित अवधि को अस्वीकार करते हैं। इसका कारण है- "बसन्त भागता-भागता चलता है, देश में नहीं, काल में।" अर्थात् हृदय का उल्लास ही बसन्त का सूचक है मानव जब भी

प्रसन्न रहता है तभी उसके लिए प्रकृति भी अनुकूल होती है। इसलिए डॉ. द्विवेदी की दृष्टि में बसन्त ऋतु नहीं, प्रतीक है, मानवोचित भावों का। “वसन्त आता नहीं ले आया जाता है। जो चाहे और जब चाहे अपने पर ले आ सकता है।”

“शरीष” के पुष्प की तरह “कुटज” का भी अपना विशेष महत्त्व है। “कुटज” में डॉ. द्विवेदी कुछ ऐसी विशेष भंगिमा की प्रतिस्थापना करते हैं जो संघर्षरत मनुष्य का इष्ट है। शिवालिक श्रृंखला पर उत्पन्न पुष्प ही कुटज है जिसे द्विवेदी जी “कुटज” कह कर संबोधित करते हैं। ऐसे उजाड़ स्थल पर पुष्पित फूलों को देखकर डॉ. द्विवेदी चकित रह जाते हैं। क्योंकि चट्टानों से रस खींचकर ही ये जीवित रहते हैं।

“कुटज” का महत्त्व कालिदास के “मेघदूत” में प्रतिष्ठित है। यक्ष ने संतप्त हृदय से मेघ की अभ्यर्थना “कुटज” के पुष्पों से की थी। इसलिए कुटज “गाढी का साथी” है। अर्थात् “मांगलिक क्रिया” से सम्बद्ध प्रकृति ही डॉ. द्विवेदी को इष्ट है। “कुटज” की जिजीविषा भी कम महत्त्व नहीं रखती है। सुख-दुःख को अनासक्त भाव से स्वीकार करते हुए, कठोरता और संत्रास के मध्य से जीवन को सहजगति से विकसित करते हुए बढ़ाना ही डॉ. द्विवेदी का इष्ट है। इस कार्य का उदाहरण “कुटज” से बढ़कर और कुछ भी नहीं “कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायु मण्डल को चूसकर झंझा—तूफान को रगड़कर अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूस कर, अवकाश की लहरी में झूमकर, उल्लास खींच लो।” परन्तु इस जिजीविषा का भी महत्त्व है। कहीं यह “जिजीविषा” दम्भ न बन जाए इसलिए “दुःख को मन का विकल्प” मानकर “वशी” और “वैरागी” बन जाना ही श्रेयस्कर है।

व्यक्ति को निर्माण के तत्त्वों का संकेत तो प्रकृति देती ही है, चरित्र निर्माण का तत्त्व भी प्रकृति से प्राप्त होता है। “साहित्य में हिमालय की परम्परा” शीर्षक निबन्ध में डॉ. द्विवेदी ने हिमालय दर्शन को “आन्तरिक गुणों” का दाता माना है। शिव का “तांडव”, पार्वती का ‘लास्य’ और उससे उत्पन्न नन्दिकेश्वर का ‘रस’ हिमालय की देन है। उत्तम साहित्य के लिए और बच ही क्या जाता है।

“देवदारु” का अलग ही महत्त्व और व्यक्तित्व है। आधुनिक परिवेश में जीवन-यापन करते हुए व्यक्तित्व कितना विवादास्पद बन जाता है, और विविध विवादों को झेलते हुए भी कितना मस्त रह सकता है, इसका संकेत “देवदारु” देने में समर्थ है। इसका कारण है कि देवदारु “अर्थातीत छन्द है—प्राणों का उल्लास नर्तन जड़शक्ति के दुर्वार आकर्षण को पराभूत करके विपुल व्योम मंडल में विहार करने का अर्थातीत आनन्द।”

“देवदारु” (देवताओं का काठ) के स्थान पर देवदारु (देवत्व गुण की बाह्य उपयोगितावादी व्याख्या) कहकर इस वृक्ष को सम्मान देते हैं डॉ. द्विवेदी। देवत्व के भाव की पहचान के लिए उनकी व्याख्या का सामाजिक रूप होना चाहिए। “देवदारु” का वृक्ष मानो बाह्य रूप में आन्तरिक गुणों की व्याख्या है। “अर्थ मात्र जाति है, छन्द मात्र व्यक्तित्व है। अर्थ आसानी से पहचाना जा सकता है, क्योंकि वह धरती पर चलता है, छन्द आसानी से पकड़ में नहीं आता, वह आसमान में उड़ा करता है।”

“देवदारु” का व्यक्तित्व रखने वाले इस छन्द के अर्थ की व्याख्या से परे मस्त जीवन यापन करते हैं। वह झूमता है स्मित हास्य के साथ मानो वह समझ रहा हो। “प्रकृति का स्मित हास्य अनुभवी के लिए विशिष्ट संकेत है। जो सब कुछ दूसरों को दे देने में समर्थ हो उस पर संघर्ष और संत्रास का प्रभाव नहीं पड़ता।”

हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में शास्त्र गौण है और मनुष्य प्रधान। इसलिए वे अपने उपलब्ध ज्ञान को सुलभ बनाने के लिए किसी संकीर्ण दृष्टिकोण से विचार नहीं करते। वे काव्य, दर्शन, इतिहास और पुराणों के साथ लोक प्रवादों को मिलाकर व्यापक दृष्टि से किसी विषय को देखते हैं। 'ठाकुर जी की बटोर' निबन्ध में एक मंदिर के भोग पूजन के प्रबन्ध के लिए होने वाली सभा में सम्मिलित होने के लिए वे गए हैं और वहाँ बैठे-बैठे समग्र देश के इतिहास का सिंहावलोकन हर दृष्टि से कर गए हैं। यह एक स्थान पर नहीं सर्वत्र होता है इसका बहुत कुछ श्रेय विश्व कवि रविन्द्रनाथ के सम्पर्क को भी है। रविन्द्रनाथ की दृष्टि की व्यापकता ने ही उन्हें नाना संघर्षों में रत मानव की विजय यात्रा के प्रति आस्थावान बनाया है। मानव और मानवता उनके साहित्य का मेरुदण्ड है और इससे उनके निबन्धों में आशावाद का तत्त्व बहुत गहरा है। कोई भी निबन्ध पढ़िए वे हमें संकीर्णता, पशु सुलभ वासनाओं के ऊपर उठाते हैं। लगता है, जैसे हम ऊपर उठ रहे हैं और यह कोई साधारण बात नहीं है – विशेष रूप से आज जबकि हम अपनी सीमित इच्छाओं की तृप्ति के लिए महत् उद्देश्यों को भूलने में तनिक भी लज्जा अनुभव नहीं करते।

रविन्द्रनाथ के अतिरिक्त कालिदास, कबीर, तुलसी और मध्यकालीन वैष्णव कवियों की आत्मा का भी साक्षात्कार उन्होंने किया है। कालिदास और कबीर की महानता उनके अनासक्त भाव के कारण थी। इस बात का उल्लेख उन्होंने कई बार किया है। 'शिरीष के फूल' निबन्ध में एक वाक्य है – "मैं कहता हूँ कि कवि बनना है मेरे दोस्तो फक्कड़ बनो।" यह फक्कड़पन आचार्य जी में भी है और यह आया है सन्तों और वैष्णव भक्तों के जीवन-दर्शन से जो घर जोड़ने की माया से अलिप्त रहे।

द्विवेदी जी अपनी समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूक हैं, जैसे कि इनके साहित्य, भाषा व राजनीति के विषय में लिखे गये निबन्धों से पता चलता है। इनके समृद्ध व्यक्तित्व को निबन्ध के माध्यम से एक प्रभावशाली वाणी प्राप्त हुई है, किन्तु उनके व्यक्तित्व का जो अंश इसमें सबसे अधिक निखरा है वह उनका विचारशील पाण्डित्य है। ये निबन्ध विचार प्रधान होते हुए भी इनके व्यक्तित्व से सने हुए हैं, क्योंकि एक सीमा तक विचार-प्रकाशन भी आत्माभिव्यंजन का ही एक रूप है। किन्तु केवल एक सीमा तक ही। अत्यधिक पाण्डित्यपूर्ण चिन्तन निबन्ध का रूप दे देता है और वह सृजनात्मक साहित्य की कोटि से निकल कर विभिन्न विषयों के ज्ञानवर्द्धक अथवा आलोचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करता है। द्विवेदी जी के अनेक निबन्धों में ऐसा ही हुआ है। संसार में बहुत थोड़ी ऐसी वस्तुएँ होंगी जो उनके पाण्डित्य और चिन्तन को प्रदीप्त न कर सकें। विषय के साथ थोड़ी-सी खिलवाड़ करते ही वे पुराण, ज्योतिष आदि का कोई ग्रन्थ खोल लेते हैं इसमें सन्देह नहीं कि इससे पाठक का बहुत ज्ञानवर्द्धन होता है, किन्तु सृजनात्मक निबन्ध के कलात्मक रूप को इससे ठेस पहुँचती है उन्हीं के शब्दों में घी को लड्डू टेढ़ा हो जाता है। किन्तु अनेक स्थलों पर पाण्डित्य को विषय का भावपूर्ण प्रतिपादन पचा लेता है। ऐसे स्थल निबन्ध में चार चाँद लगा देते हैं उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियों में भाषा-शास्त्र विषयक खींचतान निबन्ध की सुन्दरता को बढ़ा देती हैं— "पण्डित लोग कहते हैं कि 'आम्र' शब्द 'अम्र' व अम्ल शब्द का रूपान्तर है। 'अम्र' अर्थात् खट्टा। आम शुरु-शुरु में अपनी खटाई के लिए ही प्रसिद्ध था। वैदिक आर्य लोगों में इस फल की कोई विशेष कद्र नहीं थी। वहाँ तो 'स्वादु उदुम्बरम्' या जायकेदार गूलर ही बड़ा फल था लेकिन 'अमृत' शब्द कुछ इसी 'अम्र'का रूपान्तर रहा होगा। पहले शायद सोमरस के खटास के खटाये हुए रूप को ही 'अम्रित' (खट्टा बना हुआ) कहते होंगे। बाद में 'आम्र' संसार का सबसे मीठा फल बन गया और 'आम्रत', 'अमृत' बन गया। अपना-अपना भाग्य है। शब्दों के भी भाग्य

होते हैं। परन्तु यह सब अनुमान—ही—अनुमान है। सच भी हो सकता है, नहीं भी हो सकता है। पण्डितों से कौन लड़ता फिरे!’ (आम फिर बौरा गये!)

‘बसन्त आ गया है!’ और एक कुत्ता और एक मैना’ में चिन्तन और पांडित्य से मुक्त होकर लेखक प्रकृति और मनुष्येतर प्राणियों पर दृष्टिपात करता है, और उनको मानव के समक्ष रखकर उनके कार्य—व्यापार पर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि डालता हुआ एक गहरे भावमय आनन्द का अनुभव करता है। इसमें लेखक का पथ प्रदर्शन उसका हृदय करता है, उसकी बुद्धि नहीं। उदाहरण के लिए—‘पढ़ता—लिखता हूँ। यही पेशा है। सो दुनिया के बारे में पोथियों के सहारे ही थोड़ा बहुत जानता हूँ। पढ़ा है हिन्दुस्तान के जवानों में कोई उमंग नहीं है इत्यादि—इत्यादि। इधर देखता हूँ पेड़—पौधे और भी बुरे हैं। सारी दुनिया में हल्ला हो गया कि बसन्त आ गया। पर इन कमबख्तों को कोई खबर ही नहीं। कभी—कभी सोचता हूँ कि इनके पास तक संदेश पहुँचाने का कोई साधन नहीं हो सकता? महुआ बदनाम है कि उसे सबके बाद बसन्त का अनुभव होता है, पर जामुन कौन सा अच्छा है! वह तो और भी बाद में फूलता है! और कालिदास का लाडला यह कर्णिकार? आप जेट मौज में आते हैं। मुझे ऐसे लगता है कि बसन्त भागता—भागता चलता है। देश में नहीं, काल में। किसी का बसन्त पन्द्रह दिन का है तो किसी का नौ महीने का। मौजी है अमरुद। बारह महीने इस का बसन्त ही बसन्त है।’

इसी प्रकार ‘एक कुत्ता और एक मैना’ में भी लेखक इन प्राणियों को वक्रोक्तिमय सहृदयता से देखता है। विशेषकर मैना—दम्पति के परस्पर वार्तालाप वाला अंश तो बहुत ही सुन्दर है। इनकी विषय—वस्तु लेखक को पुराणों और ज्योतिष के ग्रन्थों की ओर नहीं, अपने जीवन की ओर अपने आस—पास की वस्तुओं की ओर ले गई है।

लोकतत्त्व उनके सभी निबन्धों की आधारशिला है। विषय चाहे ‘अशोक के फूल’ हो, चाहे ‘सन्तों का सूक्ष्म वेद’ वे अपने इस मूल से पलभर को भी अलग नहीं हो पाते। शास्त्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म लोकों में विहार करते हुए भी उनके मन की डोर निरन्तर इसी मूल मानुष—सत्य से बंधी रहती है। ‘ठाकुर जी की बटोर’ शीर्षक निबन्ध में उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि “साधारण मनुष्य के लिए समझ पाना बड़ा कठिन है कि कब पण्डित का शास्त्र उसकी बुद्धि को दबा देता है और कब उसकी बुद्धि शास्त्र को। द्विवेदी जी स्वयं अनेक शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। पर वे कोरे शास्त्रज्ञान की विडम्बनाओं से भली—भाँति परिचित हैं। वे लोकदृष्टि से ही शास्त्रगत सत्य का मूल्यांकन करते हैं। उनका विश्वास है कि पण्डित की बात की संगति लोक—परम्परा से ही लग सकती है। उनका पाण्डित्य उनकी शोध—वृत्ति को उकसाता है और वस्तु के प्रस्तुत सौन्दर्य में लीन उनके मन को हठात् खींचकर उसकी परम्परा का अनुसंधान करने और उसके मूल तक पहुँच जाने की ओर प्रेरित कर देता है तथापि उनकी यह प्रवृत्ति निबन्ध को तनिक भी बोझिल नहीं बनने देती। बल्कि उसकी रमणीयता में चार चाँद लगा देती है। ‘अशोक के फूल’, ‘श्रीराम के फूल’ और ‘आम फिर बौरा गये’ उनकी विद्वत्ता के संस्पर्श से सप्राण—सवाक् हो उठते हैं—मनुष्य की जययात्रा के जीवन आलेख से। यह वह ज्ञान नहीं जो जानकारी के बोझ से थक चुका होता है। यह प्रज्ञा का वह तेज है जो लेखक की विधायक कल्पना के लिए नये क्षितिज, नये आकाश उन्मुक्त कर देता है। उसे एक विलक्षण अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न कर देता है। एक उदार, निराग्रह मानव—प्रेम उनके चिन्तन का नियामक है। उनकी विद्वत्ता तटस्थ संकेतों में नहीं, बल्कि अतीत और वर्तमान के रागात्मक सम्बन्धों को प्रकाशित करने में प्रकट होती है। विद्वत्ता संवेदना से सिग्ध होती है और संवेदना

विद्वत्ता से प्रखर। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आचार्य द्विवेदी के निबन्धों में विद्वत्ता ही नहीं, विद्वत्ता का रसावेश भी है।

यह विद्वत्ता का रसावेश उनके शुद्ध ललित निबन्धों पर भी छाया हुआ है। हिन्दी निबन्ध का चरम उत्कर्ष इन निबन्धों में देखा जा सकता है। इनमें निबन्धकार के द्रष्टा और भोक्ता दोनों स्वरूपों की झाँकियाँ मिलती हैं। लेखक के 'आत्म' की, उसके व्यक्तित्व की मनोरम छटाएँ तो इनमें विद्यमान हैं ही। उसके साथ-साथ भारतीय साहित्य और संस्कृति की अनुपम सुरभि भी इनमें आद्यन्त परिव्याप्त है। एक पाश्चात्य विद्वान ने निबन्ध की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "किसी चीज से प्रभावित और प्रतिकृत व्यक्ति की मनोदशा का हू-ब-हू चित्र ही निबन्ध है।" कहना न होगा कि 'अशोक के फूल', 'आम फिर बौरा गए' और वसन्त आ गया है' के रचयिता में इस वर्णन की नैबन्धिक प्रतिभा प्रचुर मात्रा में है। किन्तु पर्याप्त आत्मव्यंजक माधुर्य लिए रहने पर भी द्विवेदी जी के ये निबन्ध उस अर्थ में पर्सनल नहीं हैं। उनमें अहं का उद्रेक नहीं, विलय है। उनका अहं किसी बहुत बड़ी सत्ता, बहुत बड़ी शक्ति के प्रति समर्पित है। महानता का अनवरत सम्पर्क और चिन्तन-मनन उन्हें स्वयं को - अपनी मानस-तरंगों को-अतिशय गम्भीरतापूर्वक लेने से रोकता है। यही कारण है कि उनके निबन्धों में व्यक्तिगत राग-विरागों की पग-पग पर घोषणा करने का आग्रह नहीं मिलता, जिससे कि हिन्दी के कई सांस्कृतिक चेतना सम्पन्न निबन्धकार तक बुरी तरह आक्रान्त हैं। वैयक्तिक निबन्धकार की सर्वप्रथम विशेषता उसकी आत्मीयता होती है। यही चार्ल्स लैम्ब की महानता का रहस्य है। 'मैं' की आत्यन्तिक परिव्याप्ति के बावजूद वह पाठक की ममता पा लेता है - इसके मूल में यही मधुर आत्मीयता है। द्विवेदी जी के निबन्धों का स्वर भी बहुत 'आत्मीय' है यह आत्मीयता लैम्ब जैसी आत्मीयता नहीं है। दोनों में स्तर-भेद है, पर प्रभाव एक सा है। द्विवेदी जी पाठक की अपेक्षा अपने विषय के साथ आत्मीय हैं। पाठक को झकझोरने या चमत्कृत कर देने की लालसा उनमें नहीं क्योंकि उनकी चेतना तो विषय के साथ जुड़ी हुई है। उनका अहं उसकी मार्मिक भावना में लीन है। अतः पाठक उनके साथ सहज भाव से, बिना किसी आतंक और संकोच के विषय के अन्दर प्रविष्ट हो सकता है। आचार्य द्विवेदी के निबन्धों का सबसे बड़ा आकर्षण यही है कि ज्ञानात्मक चेतना का उच्चस्तरीय निर्वाह करते हुए स्वर शुरु से आखिर तक सौम्य और स्निग्ध बना रहता है कोई अतिरिक्त आवेश या आवेग उन पर हावी नहीं हो सकता। उनके इस वैशिष्ट्य का अहसास तब होता है जब उनका कोई निबन्ध पढ़ने के बाद हम किसी समानधर्म समकालीन रचना की ओर अभिमुख होते हैं। एक सहज प्रसन्न व्यक्तित्व का आलोक उनके निबन्धों से फूटता रहता है। जहाँ एक ओर अधिकांश निबन्धकारों में एक आडम्बरप्रियता और स्थान-स्थान पर अपने वाग्वैदग्ध्य का प्रदर्शन करते चलने का आग्रह दिखाई देता है, उसका अभ्यास तक आचार्य द्विवेदी में नहीं मिलता। उनका वाग्विलास बहुत मार्जित और संयत होता है क्योंकि उस पर विद्वत्ता का अंकुश रहता है और कलाकार का सौन्दर्य-बोध।

विनोद और व्यंग्य भी द्विवेदी जी के निबन्धों की एक विशेषता है, जिसके कारण उनके पाण्डित्यपूर्ण निबन्ध भी बोझिल नहीं होने पाए और पाठक बिना उकताए उनको आदि से अन्त तक पढ़ने का साहस संजोए रह सकता है जो सम्भवतः इस गुण के अभाव में सम्भव न होता। बीच-बीच में वे पाठकों के मन को व्यंग्य के बाणों से गुदगुदाते उनका मनोरंजन करने के साथ अपनी बात भी कह देते हैं। 'आम फिर बौरा गए', 'समालोचक की डाक', 'शिरीष के फूल', साहित्य का नया कदम' में व्यंग्य के सरस छींटे मिलते हैं। 'क्या आपने मेरी रचना पढ़ी है?' उनकी स्वतन्त्र

हास्य प्रधान रचना है। हास्य और व्यंग्यपूर्ण रचना में पूर्ण बल तभी आता है जब लेखक तटस्थ वृत्ति को अपना कर किसी को सीधा अपने व्यंग्य का निशाना न बनाए और उसे विषय अथवा स्थिति का पूर्ण ज्ञान हो। उनकी इस रचना में एक सफल हास्य रचना के समस्त गुण विद्यमान हैं। जैसे—“सच पूछिए तो शुरु-शुरु में मनुष्य कुछ साम्यवादी ही था। हँसना-हँसाना तब शुरु हुआ होगा जब उसने कुछ पूँजी इकट्ठी कर ली होगी और संचय के साधन जुटा लिए होंगे। मेरा निश्चित मत है कि हँसना-हँसाना पूँजीवादी मनोवृत्ति की उपज है। इस युग के हिन्दी साहित्यिक जो हँसना नापसन्द करते हैं। उनका कारण शायद यह है कि पूँजीवादी बुर्जुआ मनोवृत्ति को मन-ही-मन घृणा करने लगे हैं। इनकी युक्ति शायद इस प्रकार है – “चूँकि संसार के सभी लोग हँस नहीं सकते, इसलिए हँसना एक गुनाह है और चूँकि संसार के सभी लोग थोड़ा बहुत रो सकते हैं, इसलिए रोना ही वास्तविक धर्म है। फिर भी अधिकांश साहित्यिक रोते नहीं केवल रोनी सूरत बनाए रहते हैं। जिसे थोड़ा-सा भी गणित सिखाया गया हो वह बहुत आसानी से इस आचरण की युक्ति समझ सकता है। मैं समझ रहा हूँ।” कितना करारा व्यंग्य है आजकल के उन दिखावटी लेखकों पर जो रोनी सूरत से अपना लेखक होना सिद्ध करते हैं और विशेष रूप से उन प्रगतिवादी लेखकों पर जो अपने चेहरे पर कृत्रिमता का विषाद भाव बनाए रखते हैं और साथ ही अपनी वेशभूषा भी मुहरम की बनाए रहते हैं। उसी लेख में समालोचकों का कसा हुआ व्यंग्य इस प्रकार है – “आसमान में मुक्का मारने से कम परिश्रम नहीं है और मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हँसी खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और समालोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकम्पित। यह क्या कम साधना है?”

द्विवेदी जी के निबन्धों का व्यक्ति पक्ष इतना प्रबल है कि उनके निबन्धों के कला पक्ष एवं अध्ययन पक्ष पर भी हावी हो जाता है और उनकी अधिकतर रचनाओं को वैयक्तिक या आत्मपरक निबन्धों की कोटि में ला रखता है। साधारणतया निबन्धकार के व्यक्तित्व को उभारने में प्रधानतया विवेचन पद्धति, ज्ञान पक्ष, चिन्तन एवं विचार पक्ष, आस्था, धारणा, आदर्श, भावमुग्धता में से किसी एक पक्ष की प्रधानता होती है किन्तु द्विवेदी जी के निबन्धों में कोई भी पक्ष दुर्बल नहीं है। उनके निबन्धों में ज्ञान गरिमा के साथ सहज सरलता है, चिन्तन के साथ विचारों की स्पष्टता है, गम्भीर विवेचन के साथ, गवेषणात्मक निर्णयों के साथ प्रसादात्मकता है पर इन सबसे बढ़कर है उनके निबन्धों में उनके निजत्व का समावेश। अत्यंत गहन विषय का प्रतिपादन करते-करते वे बीच में निजी विचार देने लगते हैं और अपने विषय में कहने लगते हैं। ‘बसन्त आ गया’ में पेड़ों के वर्णनों से कमजोरों की भावुकता का वर्णन करते-करते, अपनी कहने लगते हैं। ‘पढ़ता-लिखता हूँ। यही पेशा है। सो दुनिया के बारे में पोथियों के सहारे ही थोड़ा बहुत जानता हूँ। बसन्त आता नहीं, ले आया जाता है। जो चाहे और जब चाहे अपने पर ले आ सकता है। वह मरियल कचनार ले आया है। अपने मोटेराम तैयारी कर रहे हैं और मैं ? मुझे बुखार आ रहा है यह भी नियति का मजाक ही है। सारी दुनिया में हल्ला हो गया कि बसन्त आ रहा है, और मेरे पास आया बुखार।”

‘आम फिर बौरा गए’ में उनकी भावुकता— “मेरा मन अधभूले इतिहास के आकाश में चील की तरह मंडरा रहा है, कहां कुछ चमकती चीज नजर आई नहीं कि झपट्टा मारा।” अशोक के फूल’ में भी भावुकता उसी तरह उमड़ी आती है— “मेरा मन उमड़-धुमड़ कर भारतीय रस साधना के पिछले हजार वर्ष पर बरस जाना चाहता है।”

उनका व्यक्ति पक्ष यत्र-तत्र प्रधान हो उठा है। ‘अशोक के फूल’, ‘बसन्त आ गया है’, ‘आम फिर बौरा गए’,

‘शिरीष के फूल’, ‘महात्मा के महाप्रयाण के बाद’ आदि निबन्धों में इसका विशेष परिचय मिलता है। इनसे उनके व्यक्तित्व की निश्चलता के साथ ही पाठक के प्रति आत्मीयता का भाव भी प्रकट होता है। जिसके कारण ही वे पाठकों से सीधा, सरल और ममतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर पाये हैं, और केवल यही कारण है कि उनकी रचनाएँ ज्ञान का गौभीर्य लेकर भी दुरुह नहीं बन पायी हैं।

आचार्य जी के निबन्ध हिन्दी गद्य साहित्य के चरम विकास के द्योतक हैं। उनकी भाषा सरल है तथा वाक्य योजना संक्षिप्त है। गम्भीर से गम्भीर विषय का प्रतिपादन करने में भी उन्होंने छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है। यथा—‘पढ़ता-लिखता हूँ। यही पेशा है। सो दुनिया के बारे में पोथियों के सहारे थोड़ा बहुत जानता हूँ। पढ़ता हूँ हिन्दुस्तान के जवानों में कोई उमंग नहीं’ इत्यादि-इत्यादि। ‘भारतवर्ष में ज्योतिष के अध्ययन कारण याग यज्ञ है। वैदिक आर्य याग-यज्ञ के प्रेमी थे। विशेष-विशेष यज्ञों के लिए समय का निर्णय करना नितांत प्रयोजनीय था। काल का निर्णय करने के लिए ज्योतिष-विद्या के सिवा दूसरा रास्ता नहीं था।’

द्विवेदी जी के निबन्धों की भाषा चुस्त है। उक्ति में चमत्कार एवं अनूठापन लाने के लिए उन्होंने मुहावरों एवं कहावतों अथवा लोकोक्तियों का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया है। जिससे उनकी शैली में प्रभावोत्पादकता एवं भावोद्रेकता भी आ गई — ‘यह जाति उस जुलाहे के हुक्के की भाँति है जिसका नारियल भी सात बार बदला गया और डंडा भी सात बार, परन्तु हुक्का फिर भी वही था।’ ‘दो तीन अमरुद हैं जो सूखे सावन भरे भादों कभी रंग नहीं बदलते अथवा बालू में से तेल निकालना’ आदि। इसी के साथ-साथ आचार्य जी के निबन्धों की भाषा में कोमलता एवं व्यंजकता भी है जो कि पाठक के हृदय में गुदगुदी-सी उत्पन्न कर देती है यथा—‘क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी ? सहृदयता क्या तृप्त हो गई थी ? कविता सो गई थी ? ना, मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है’ ‘पंडिताई भी एक बोझ है। जितनी ही भारी होती है उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है।’ ‘अशोक को जो सम्मान कालिदास से मिला वह अपूर्व था। सुन्दरियों से आसिंजनकारी नूपुरवाले चरणों के मृदु आघात से वह फूलता था, कोमल कपोलों पर कर्णवतंस के रूप में झूलता था और चंचल नील अलकों की अचंचल शोभा को सौ गुना बढ़ा देता था।’

एक ओर जहाँ डॉ० द्विवेदी के निबन्धों की भाषा सरल कोमल चुस्त एवं मुहावरेदार है वहाँ दूसरी ओर, गूढ़-गुम्फित वाक्य शैली के भी कहीं-कहीं दर्शन होते हैं। ऐसे स्थानों पर वाक्यों के प्रयोग में एक से अधिक क्रिया-पदों का योग रहता है। गूढ़-गुम्फित शैली में वही लेखक सफल हो सकता है जिसकी काव्य-रचना शक्ति प्रौढ़ता को पहुँच चुकी हो।

संक्षिप्त शैली को अपनाते के कारण ही डॉ० द्विवेदी के वाक्य कहीं-कहीं सूत्रवत हो गए हैं— ‘स्वर्ग को जीतने वाला कठोर धनुष जो धरती पर गिरा तो कोमल फूलों में बदल गया’। ‘स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होती’ अथवा ‘कहते हैं दुनिया बड़ी भुलकवड़ है। केवल उतना ही याद रखती है जिससे उसका स्वार्थ साधता है।’ ‘सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है,’ मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति हैं’ अथवा ‘कमजोरों में भावुकता अधिक होती होगी’ आदि। वस्तुतः भाषा, भाव-एवं विचार का जैसा सामंजस्य इस शैली में देखने को मिलता है, वह सर्वथा सराहनीय है।

5.4 सारांश

स्पष्ट है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध विषय वस्तु की दृष्टि से व्यापक, विचारों की दृष्टि से गम्भीर एवं शैली की दृष्टि से सरल, एवं साहित्यिक हैं। डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त ने कहा है – “आप के निबन्धों में हृदय की सरलता-सरसता, प्राचीन साहित्य एवं संस्कृति का ज्ञान-वैभव, विचारों की मौलिकता एवं शैली की रोचकता का सफल समन्वय दृष्टिगोचर होता है। गम्भीर से गम्भीर विषय को भी वे अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। आचार्य शुक्ल की भाँति वे पाठक से उदासीन नहीं रहते अपितु कहीं-कहीं वे अपने दिल की बात सुनाने के लिए उसके बहुत निकट आ जाते हैं” यही कारण है कि हिन्दी निबन्ध साहित्य के क्षेत्र में उनकी देन अप्रतिम एवं अनुपम मानी जाती है।

5.5 कठिन शब्द

गूढ-गुम्फित, वृत्ति, विडम्बना, अर्न्तदृष्टि विद्वता, आत्माभिब्यंजन दुर्दम्य, निर्मम, परिव्याप्त, सुरम्यरूप

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताओं पर सविस्तार प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में भारतीय संस्कृति के विशेष योगदान पर विचार करते हुए, द्विवेदी के निबन्धों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की मूल विषय वस्तु पर विचार करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० चौथी राम यादव का साहित्य
2. हिन्दी का ललित निबन्ध और आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० विदुषी अग्रवाल
3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में सामाजिक चिंतन – डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
4. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और उनका साहित्य – डॉ० राजेन्द्र दीक्षित
5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त वइसैया
6. हिन्दी निबन्ध गणपति चन्द्रगुप्त
7. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ० ज्ञानेन्द्र वर्मा
8. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ० हरदयाल

.....

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में व्यक्त भारतीय संस्कृति

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 निबंधों में व्यक्त भारतीय संस्कृति

6.4 सारांश

6.5 कठिन शब्द

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

6.1 उद्देश्य

- संस्कृति का अर्थ जान सकेंगे ।
- भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को जान सकेंगे ।
- हज़ारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति के द्वारा समस्त समाज को एक करने के पक्षधर हैं, भारतीय संस्कृति का प्रभाव हज़ारी प्रसाद द्विवेदी पर किस सीमा तक है यह जान सकेंगे ।

6.2 प्रस्तावना

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति के अनन्य पुजारी हैं। उनके हृदय पर

भारतीय संस्कृति की गहन छाप आरम्भ से ही दिखाई देती है। वैसे शान्तिनिकेतन में गुरुवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में रहने के कारण द्विवेदी जी के भावों एवं विचारों पर सांस्कृतिक विचारधारा का प्रभाव और भी अधिक गहराई के साथ पड़ा है। इस तरह द्विवेदी जी के भाव एवं विचार पूर्णतया भारतीय संस्कृति के वातावरण में पल्लवित हुए हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनका साहित्यिक जीवन एवं उनका कार्य-क्षेत्र भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम आकर्षण केन्द्रों से ओतप्रोत रहा है और वे चाहे शान्ति निकेतन में रहे हों, चाहे काशी विश्वविद्यालय में, सर्वत्र भारतीय-संस्कृति की पावन पयस्विनी में आकंट निमग्न रहे हैं यही कारण है कि उनके निबन्धों में सर्वाधिक सांस्कृतिक तत्त्वों की बहुलता के ही दर्शन होते हैं। उनके साहित्यिक, राजनीतिक, व्यावहारिक एवं राष्ट्रीय निबन्धों में सांस्कृतिक तत्त्वों की भरमार दिखाई देती है फिर उनके 'भारतीय संस्कृति की देन', 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या', 'धार्मिक संस्कृतियों का संगम' आदि सांस्कृतिक निबन्धों का कहना ही क्या।

6.3 निबन्धों में व्यक्त भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति आस्था, विश्वास एवं श्रद्धा से परिपूर्ण है। यहाँ आरम्भ से ही एक शाश्वत सत्ता में विश्वास करने की परम्परा चली आ रही है और ऐसी धारणा है कि वह विराट् सत्ता ससीम दिखाई देने पर भी असीम है, शान्त होकर भी अनन्त है, भिन्न-भिन्न रूपों में उद्भाषित होकर भी अभिन्न है और विविध भेदों में विरक्त होकर भी अभेद एवं अखंड स्वरूप है। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियमन, संचालन एवं नियन्त्रण करती है और मानव उसी के संकेतों पर सारे कार्य अनजाने ही किया करता है। कोई उसे साकार एवं कोई निराकार कहता है और कुछ उसे साकार एवं निराकार दोनों ही रूपों में मानते हैं। परन्तु उसका अस्तित्व प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। आचार्य द्विवेदी जी ने भी स्थान-स्थान पर उस अपरिमेय, अनन्त एवं अखंड सत्ता की ओर संकेत किये हैं। इस दृश्यमान सौन्दर्य के उस पार इस भासमान जगत् के अंतराल में कोई एक शाश्वत सत्ता है, जो इसे मंगल की ओर ले जाने के लिए दृढ़ निश्चय है। इतना ही नहीं लेखक का तो दृढ़ विश्वास है कि वह शाश्वत सत्ता हम से भी दूर नहीं है। हमारे हृदय में ही विद्यमान है। केवल हम उसे देख और समझ नहीं पाते। यदि हमें उसका पता चल जाए तो हम अपार शक्ति एवं साहस से परिपूर्ण अपनी अनुपम शक्ति का अनुभव कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने कहा भी है "कितनी बार मुझे ऐसा लगा है कि वह अन्तर्धम उसे आत्मा कहिये या जो कुछ भी कहिये बहुत शक्तिशाली जीवनोपादान है। उसके सन्तुष्ट होने से मनुष्य बड़ी आसानी से विरोधों और उपहासों की उपेक्षा कर सकता है। कई बार जब मैं उसे ठीक-ठीक पकड़ सका हूँ, मेरे अन्दर अपार साहस आया है। मैं क्षण भर के लिए कभी उसका साक्षात्कार पा जाता हूँ और उस पर मेरा विश्वास हो गया है कि वह विशाल शक्ति-पुंज मेरे भीतर है। द्विवेदी जी की उक्त भावना स्पष्ट रूप से कबीरदास की "मोको कहाँ ढूँढें बंदे मैं तो तेरे पास में" की भावना के ही अनुरूप है और यह भावना भारतीय जन-जीवन में बड़ी गहराई के साथ विद्यमान है।

भारतीय संस्कृति में समर्पण की भावना अत्यन्त प्रबल रूप में मिलती है यहाँ आरम्भ से ही अपने, परिवार, अपने समाज, अपने राष्ट्र एवं विश्व तक के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने

अथवा, आत्मसमर्पण करने पर बल दिया गया है। भारतीय दार्शनिकों ने इस दृश्यमान जगत् को ब्रह्म की प्रत्यक्ष मूर्ति बताया है। अतएव जगत् के लिए अपना समर्पण करने का तात्पर्य निःशेष भाव से उस विराट सत्ता या ब्रह्म के लिए ही आत्मसमर्पण करना माना जाता है। इसी में जीवन की सार्थकता घोषित की गई है एवं यही जीवन का चरम लक्ष्य भी माना गया है, क्योंकि आत्मसमर्पण द्वारा ही मानव वास्तविक सत्य को जान पाता है और इसी पुनीत कार्य द्वारा वह नर से नारायण की पदवी का भी अधिकारी हो जाता है। विविध ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति एवं अनेक शास्त्रों के अध्ययन से भी इस वास्तविक स्थिति का बोध नहीं होता। आचार्य द्विवेदी जी ने स्पष्ट संकेत किया है कि परमपुरुष के प्रति-जिसकी प्रत्यक्ष मूर्ति यह दृश्यमान चराचर जगत् है अपने आपको निःशेष भाव से समर्पण कर देना ही वास्तविक सत्य है” अथवा “अपना सत्य तब होता है जब मनुष्य अपने सुहृदस्वरूप ‘परमपुरुष’ को आत्मसमर्पण कर देता है क्योंकि अपने को देना ही बड़ी वस्तु है। ज्ञान-विज्ञान सब कुछ तभी सार्थक होते हैं जब मनुष्य अपने आपको अपने सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य के हाथों निःशेष भाव से दे दें। “वास्तव में यह समर्पण की भावना ही सर्वश्रेष्ठ त्याग है। यही अहंकार का समूल नाश करके मानव को उन्नति एवं अभ्युदय की ओर अग्रसर करती है और इसी से मानव निश्चयस की भी प्राप्ति कर सकता है, क्योंकि सांसारिक अभ्युदय एवं भौतिक उन्नति प्राप्त करके भी यदि मानव आत्मसमर्पण नहीं कर पाता, तो वह निश्चयस का अधिकारी नहीं होता। इसका कारण भारतीय संस्कृति में ‘तेन त्यक्तेन भुज्जीथा’ कह कर त्याग के साथ ही उपभोग करने की सलाह दी है और यह त्याग आत्म-समर्पण का ही प्रथम सोपान है। इसी त्याग के द्वारा मानव सफलता प्राप्त करता है और इसी के बल पर प्रेम और मैत्री स्थापित करता है। मानव-जीवन की चरितार्थता ही वास्तव में उस त्याग के अन्तर्गत है, जिसमें अपना सर्वस्व सबके कल्याण के लिए दे दिया जाए।” यही आत्म बलिदान है, यही स्वात्मार्पण है और यही भारतीय जीवन की चरम सार्थकता है, जो भारतीय संस्कृति की अमर देन है।

भारतीय संस्कृति समन्वय-प्रधान है। इसी कारण यहाँ भौतिक एवं आध्यात्मिकता, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, भोग एवं त्याग, प्रेय एवं श्रेय, गृहस्थ एवं वैराग्य, जड़-चेतन, भला और बुरा, देशी और विदेशी सभी के अन्तर्गत समन्वय स्थापित करने का बड़ा ही सुन्दर प्रयत्न दिखाई देता है। भारतीय समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों का निर्माण, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास नामक चार आश्रमों की स्थापना तथा धर्म, अर्थ और काम के साथ-साथ मोक्ष को भी चतुर्वर्ग में सम्मिलित करने की योजना स्पष्ट ही समन्वय की ओर संकेत कर रही है। विभिन्न विरोधों एवं विविध मान्यताओं से सामंजस्य स्थापित करना ही समन्वय की मूल प्रवृत्ति का द्योतक है। भारतीय जन-जीवन में यह कार्य वैदिक ऋषियों से लेकर गौतम, कबीर, तुलसी, महात्मा गाँधी आदि तक सभी करते चले आ रहे हैं और इसी कारण वे लोक नायक कहलाते हैं। द्विवेदी जी के ही शब्दों में “भारतवर्ष का लोक नायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। क्योंकि भारतीय समाज में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, “गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।” भारतीय संस्कृतियों के इन पुजारियों ने पारस्परिक वैमनस्य एवं

सामाजिक विरोधों को दूर करके समन्वय स्थापित करने की जैसी चेष्टा की थी वैसी ही चेष्टा महात्मा गाँधी ने भी की थी। उन्होंने भी क्षुद्रस्वार्थों में लीन विभिन्न दलों एवं विविध पद्धतियों में विभक्त मानवों को एक सूत्र में बाँधने के लिए समन्वय का सेतु तैयार किया था। आचार्य द्विवेदी जी ने लिखा भी है – “छोटे स्वार्थ निश्चय ही मनुष्य के भिन्न-भिन्न दलों में टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं परन्तु यदि मनुष्य चाहे तो ऐसा महासेतु निर्माण कर सकता है जिससे समस्त विच्छिन्नता का अन्तराल भर जाए। महात्मा जी ने उस महान् सेतु के निर्माता सत्य को देखा था और धर्म और व्यवहार को एक करने में सफलता प्राप्त की थी।” इसी समन्वय की भावना के कारण आचार्य द्विवेदी का तो यहाँ तक विचार है कि “मैं संस्कृति को किसी देश-विदेश या जाति विशेष की अपनी मौलिकता नहीं मानता। मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक ही सामान्य मानव-संस्कृति हो सकती है। यह दूसरी बात है कि वह व्यापक संस्कृति अब तक सारे संसार में अनुभूत और अंगीकृत नहीं हो सकी है” इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि विश्व-भर के मानव इस अभिन्नता एवं अभेदता को समझ कर एक ही संस्कृति के अनुयायी हो जाएँ तो सारे भेद भाव, ईर्ष्या-द्वेष, युद्ध-संघर्ष आदि पूर्णतया समाप्त हो सकते हैं। वैसे भी सुन्दर एवं असुन्दर तथा समान एवं असमान का सुव्यवस्थित ढंग से सामंजस्य करना अथवा उन्हे एकरूपता देने की चेष्टा करना ही सौन्दर्य कहलाता है और सौन्दर्य सदैव सामंजस्य में होता है। इसी कारण द्विवेदी जी ने अधिकांश स्थलों पर इसी सामंजस्य अथवा समन्वय पर बल दिया है, जोकि भारतीय संस्कृति की मूल भावना है।

भारतीय संस्कृति का सबसे प्रबल स्वर मानव-प्रेम का है। यहाँ सदैव मनुष्यता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है और मानव-मात्र के कल्याण की सदैव कामना की गई है। भारतीय मनीषियों ने कभी देश, काल एवं भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध मनुष्य के किसी समाज विशेष के कल्याण की कामना नहीं की है अपितु मानव-मात्र एवं संपूर्ण मनुष्यों के कल्याण की कामना की है। इसी कारण यहाँ “सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा काश्चिद् दुःख भाग् भवेत्” कहकर सम्पूर्ण विश्व के मानवों के सुखमय जीवन की निरोगावस्था की और कल्याण की कामनाएँ की गई हैं। आचार्य द्विवेदी के निबन्धों में भी मानव-प्रेम एवं मनुष्यता के प्रेम का स्वर सबसे अधिक गूँज रहा है, यहाँ यत्र-तत्र मानव मात्र के कल्याण की ओर अथवा मनुष्यता के उत्थान की ओर विद्वान् लेखक अधिक अग्रसर हुआ है। इसी कारण कभी विद्वान् लेखक मनुष्यता की अभिलाषा करता हुआ लिखता है कि “इतिहास विधाता का स्पष्ट इंगित इसी ओर है कि मनुष्य में जो मनुष्यता है जो उसे पशु से अलग कर देती है वही आराध्य है” क्या साहित्य और क्या राजनीति सबका एक मात्र लक्ष्य इसी मनुष्यता की सर्वांगीण उन्नति है। कभी वह मानवों में व्याप्त विषमता, लूट-खसोट, दासता, जड़िमा, मोह, कुसंस्कार, क्षुद्रता आदि से विक्षुब्ध होकर पुकार उठा है कि “वस्तुतः हिन्दू-मुस्लिम एकता भी साधन है, साध्य नहीं। साध्य है मनुष्य को पशु सामान स्वार्थी धरातल से ऊपर उठाकर मनुष्यता के आसन पर बैठाना। हिन्दू और मुस्लिम अगर मिलकर संसार में लूट-खसोट मचाने के लिए साम्राज्य स्थापना करने निकल पड़े तो उस हिन्दू-मुस्लिम मिलन से मनुष्यता काँप उठेगी। परन्तु उस हिन्दू-मुस्लिम मिलन का उद्देश्य है, मनुष्य को क्षुद्र स्वार्थ और अहमिका की दुनिया से

ऊपर उठाकर सत्य, न्याय और औदार्य की दुनिया में ले जाना, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को हटाकर परस्पर सहयोगिता के पवित्र बन्धन में बाँधना। मनुष्य का सामूहिक कल्याण ही हमारा लक्ष्य हो सकता है, वही मनुष्य का सर्वोत्तम प्राप्य है। इसीलिए आचार्य द्विवेदी की राय में वही साहित्य महत्त्वपूर्ण है जिसमें मानव समाज को कल्याण की ओर अग्रसर करने वाली भावनाएँ अधिक मात्रा में मिलती हैं। 'अशोक के फूल' निबन्ध संग्रह में लिखा भी है कि "जो साहित्य अपने आप के लिए लिखा जाता है, उसकी क्या कीमत है, मैं नहीं कह सकता, परन्तु जो साहित्य मनुष्य-समाज को रोग-शोक, दारिद्र्य-अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चय ही अक्षय निधि है।"

भारतीय संस्कृति में मानव-प्रेम के साथ-साथ प्रकृति-प्रेम को भी बड़ा महत्त्व दिया गया है। प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। आरम्भ से ही प्रकृति की करुणामयी गोद में क्रीड़ा करते हुए मानव ने अनंत शक्ति एवं अखंड ज्ञान प्राप्त किया है और प्रकृति के दुलार एवं प्यार के कारण ही इतना बड़ा होकर आज मानव प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ हुआ है। प्रकृति ने मानव में आस्था एवं विश्वास पैदा किया है। प्रकृति से उसने सेवा एवं कर्तव्य परायणता का पाठ सीखा है। प्रकृति ने ही उसे प्रगति के पथ पर अग्रसर होना सिखाया है और प्रकृति से ही मानव ने उदारता, सहिष्णुता, सरसता, परदुःखकातरता आदि अनेक मनुष्योचित भावों को ग्रहण किया है। इसी कारण प्रकृति के प्रति मानव का सहज आकर्षण होना स्वाभाविक है। कभी वे आम्र मंजरी को ललचाई दृष्टि से देखते हुए कह उठते हैं कि "अहा, कैसा मनोहर कोरक है। बलिहारी है इस 'आम्रहरित-पांडुर शोभा की। अभी सुगन्धि नहीं फैली है किन्तु देर भी नहीं।" कभी वे अशोक को खिला हुआ देखकर कह उठते हैं कि 'अशोक में फिर फूल आ गए हैं। इन छोटे-छोटे लाल-लाल पुष्पों के मनोहर स्तबको में कैसा मोहन भाव है। कभी उन्हें वसंत आने पर भी पड़ोसी के कचनार के न खिलने का क्षोभ होता है तो कभी अपने कचनार वृक्ष को फूलों से लदा हुआ देख कर वे फूले नहीं समाते। पर कभी उन्हें वसंत आ जाने पर भी महुआ, जामुन और कर्णिकार जब खिले नहीं दिखाई देते तब इन पर गुस्सा आता है और अमरूद को देखकर प्रसन्नता होती है क्योंकि वह बारह महीने बसंत मनाता रहता है। द्विवेदी जी पेड़-पौधों में ही इतने अनुरक्त रहते हों यही बात नहीं है उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण प्रकृति सचेतन है।

भारतीय संस्कृति में स्वदेश-प्रेम की भावना को भी अत्याधिक महत्त्व दिया गया है। यहां आसेतु हिमाचल स्वदेश के सम्पूर्ण वन, पर्वत, नदी एवं ग्रामों को अपने अंग में समेटे हुए एक भारतमाता की कल्पना की गई है। जिसकी गोद में हम सब पले हैं, जिसने धन-धान्य दिया है, जिसने हमें आमोदकारी पवन एवं मोदकारी सुगंधियां प्रदान की हैं तथा जिसकी रत्नगर्भा शस्यश्यामला भूमि हमें भोजन एवं वस्त्र प्रदान करके अपने 'वसुंधरा' नाम को सार्थक कर रही हैं। उसके कीड़े-मकोड़े, पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, जंगल-झाड़, मरू-मालव, सभी अपने हैं, वे हमारे ही अंग हैं और उन्हें हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय समझना चाहिए। अपनी इस मातृभूमि को शास्त्रों में

‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’ कह कर स्वर्ग से भी बढ़कर बताया गया है। ऐसी पुनीत एवं पावन तथा असीम सुखदायिनी मातृभूमि के प्रत्येक अंग से भली प्रकार परिचित होना हमारा पुनीत कर्तव्य है परन्तु दुःख इस बात का है कि हम स्वयं अपनी मातृभूमि के अंग-प्रत्यंगों के सौंदर्य को देखने की चेष्टा नहीं करते, गुलामी की जंजीरों में बहुत दिनों तक जकड़े रहने के कारण अभी तक हम विदेशी पण्डितों की दृष्टि से ही अपनी रत्नगर्भा धरित्री के दर्शन करते हैं, इस पर क्षोभ प्रकट करते हुए आचार्य द्विवेदी ने लिखा है कि “जिन विदेशी पंडितों ने हमारे देश के जड़, चेतन के बारे में परिश्रमपूर्वक और ईमानदारी के साथ बहुत कुछ लिख रखा है उनके हम अवश्य कृतज्ञ होंगे, पर उतने से ही हमें सन्तुष्ट नहीं होना है, हमें अपने देश को अपनी आँखों से देखना है। जब तक हम इस विशाल और महान् देश को उसकी समूची खूबियों के साथ नहीं पहचानते तब तक इसके प्रति हमारा प्रेम मौखिक और क्षणस्थायी होगा।” उक्त कथन द्वारा द्विवेदी जी ने स्वदेश-प्रेम के साथ-साथ स्वभाषा, स्वभूमि, स्वजीव-जन्तु आदि सभी के प्रति असीम प्रेम एवं सद्भाव रखने का आग्रह किया है और यही भावना भारतीय संस्कृति की मूलभूत भावना है।

उपर्युक्त भारतीय संस्कृति की मूलभूत भावनाओं एवं मान्यताओं के अतिरिक्त और बहुत-सी धारणाएँ एवं मान्यताएँ भी द्विवेदी जी के निबन्धों में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। उदाहरण के लिए यहां पर कर्मफल का सिद्धान्त अत्यधिक मान्य है। यह सिद्धान्त भारतीय जीवन की रग-रग में व्याप्त है। उसकी ओर संकेत करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है- “कर्म फल का सिद्धान्त भारतवर्ष की अपनी विशेषता है। चाण्डाल अपनी दुर्गति के लिए कर्म की दुहाई देता है, ब्राह्मण अपने उच्चपद के लिए भी कर्म की दुहाई देता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्मों के लिए जवाबदेह है। कोई न तो किसी दूसरे के बदले उसे भोग सकता है और न उद्योग करके संचित और प्रारब्ध कर्मों को बदल ही सकता है।” इसके साथ ही भारतीय संस्कृति में तप, संयम, सेवा, परोपकार, प्रेम आदि का भी अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। इनकी ओर संकेत करते हुए द्विवेदी जी ने तप और संयम की महत्ता बताते हुए लिखा है - ‘अपने को सहज ही दे देने की योग्यता कठोर तप और संयम से प्राप्त होती है।’ कहीं पर सेवा का महत्त्व प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि “जो लोग साहित्य-सृष्टि करके, भाषा के माध्यम से, जनता रूपी जनार्दन की सेवा करना चाहते हैं वे महान् हैं” और कहीं प्रेम के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि प्रेम ही बड़ी वस्तु है, वही भगवान का वास्तविक स्वरूप है।

6.4 सारांश

सारांश यह है कि द्विवेदी जी के निबन्ध भारतीय संस्कृति की मूल प्रवृत्तियों से परिपूर्ण हैं। इसी कारण इनमें कहीं हमें तप, अहिंसा, त्याग एवं अनासक्ति से परिपूर्ण सच्चरित्र मानव के निर्माण का प्रयास दिखाई देता है, कहीं शुद्धाचरण एवं मानवता-प्रेम का स्वर गूंजता हुआ सुनाई पड़ता है और कहीं भौतिक वातावरण से विक्षुब्ध आध्यात्मिक जीवन की शान्ति में साँस लेती हुई मानवता के सफल

जीवन की कामना का स्वर उमड़ता हुआ दिखाई देता है। इतना अवश्य है कि आचार्य जी भारतीय संस्कृति में व्याप्त रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता, परम्परा-प्रेम आदि का उच्छेदन करना भी नहीं भूले हैं परन्तु उन का मूल स्वर मानवोत्थान है, जिसमें मनुष्यता के परिष्कार एवं संस्कार का प्रयत्न अधिक किया गया है। इसी कारण कहीं पर आपने कठोर संयम एवं मानसिक अनुशासन से ओतप्रोत, सच्चरित्रता का व्यवहार करने वाली, सत्यजीवन में विश्वास रखने वाली, सज्जनता एवं मानवप्रेम से परिपूर्ण मनुष्यता के उत्थान की कामना की है, तो कहीं श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उस विराट सत्ता में अटूट प्रेम रखने वाली, भेदभाव को छोड़कर सम्पूर्ण मानवों में एकतत्त्व का ही दर्शन करने वाली, जनार्दनस्वरूप जनता के अभ्युदय की कामना की है। निस्संदेह आचार्य जी के ये निबन्ध भारतीय संस्कृति में व्याप्त आध्यात्मिकता, उदारता, मानवताप्रेम, मानसिक संयम, आत्मसमर्पण, स्वदेशाभिमान, असीम श्रद्धा, अटूट विश्वास, परदुःख कातरता आदि अनेक भावों से ओत-प्रोत हैं, इसी कारण ये निबन्ध भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं और सांस्कृतिक तत्वों के अक्षय भंडार हैं।

6.5 कठिन शब्द

अनासक्ति, शुद्धाचरण, विक्षुब्ध, उच्छेदन, विच्छिन्नता, अभिन्नता, अभेदता, अभ्युदय, उद्भाषित, अपरिपेय ।

6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. संस्कृति का अर्थ समझाते हुए द्विवेदी के निबन्धों में ब्यक्त भारतीय संस्कृति पर विचार कीजिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति के अनन्य पुजारी है, सिद्ध कीजिए ।

.....

.....

.....

.....
.....
.....
प्र3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में व्यक्त भारतीय संस्कृति को स्पष्ट करते हुए, अपने विचार स्थापित कीजिए ।
.....
.....
.....
.....
.....

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० चौथी राम यादव का साहित्य
 2. हिन्दी का ललित निबन्ध और आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० विदुषी अग्रवाल
 3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में सामाजिक चिंतन – डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
 4. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और उनका साहित्य – डॉ० राजेन्द्र दीक्षित
 5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त वइसैया
 6. हिन्दी निबन्ध गणपति चन्द्रगुप्त
 7. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ० ज्ञानेन्द्र वर्मा
 8. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ० हरदयाल
-

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों की भाषा शैली

- 7.0 रूपरेखा
- 7.1 उद्देश्य
- 7.2 प्रस्तावना
- 7.3 आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों की भाषा शैली
 - 7.3.1 भाषा शैली
 - 7.3.2 शैली
 - 7.3.2.1 विचारात्मक शैली
 - 7.3.2.2 भावात्मक शैली
 - 7.3.2.3 वर्णनात्मक शैली
 - 7.3.2.4 व्यंग्यात्मक शैली
- 7.4 सारांश
- 7.5 कठिन शब्द
- 7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

7.1 उद्देश्य

- भाषा और शैली का अर्थ जान सकेंगे ।
- भाषा और भाव का सम्बन्ध जान सकेंगे ।
- शैली के विविध प्रकार जान सकेंगे ।
- द्विवेदी ने निबन्धों में अधिकतर किस भाषा एवं शैली के आधार बनाया है, जान सकेंगे ।

7.2 प्रस्तावना

भाषा विचार-विनिमय का वह विशिष्ट माध्यम है, जो न केवल मानव मन की गहन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। भाषा के अभाव में साहित्य रचना की कल्पना असम्भव है। रचनाकार की अनुभूतियों को उतनी ही तीव्रता के साथ पाठक अथवा श्रोता को अनुभूत कराने का भाषा का होता है और शैली अभिव्यक्ति उसे एक साथी व समर्थ व्यक्तित्व प्रदान करती है। शैली का सच्चा उत्कर्ष निबन्ध रचना में मिलता है। निबन्ध में विषय के अनुरूप शैली का परिवर्तन भी होता है। विषय के अनुसार ही वनर्थ शैली की अपेक्षा निबन्ध में होती है। शैली अभिव्यक्ति का विशिष्ट गुण है और अभिव्यक्ति और भाषा अन्योन्याश्रित है। दूसरे शब्दों में कहे तो विचार और वाणी परस्पर अविभाव है। शैली भाषारूप चिंतन है।

7.3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की भाषा शैली

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के शीर्षस्थ निबन्धकार हैं। आचार्य शुक्ल के पश्चात् द्विवेदी जी को ही हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माना जाता है। द्विवेदी जी के वैयक्तिक निबन्ध साहित्य की अनुपम निधि हैं। विचारात्मक, आलोचनात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक प्रायः सभी कोटि के निबन्धों की रचना उन्होंने की है। उन्होंने 200 से भी अधिक निबन्ध लिखे जो 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'विचार-प्रवाह', 'हमारी साहित्यिक समस्याएं', 'कल्पलता', 'साहित्य का अर्थ', 'गतिशील चिंतन', 'मध्यकालीन धर्म साधना', 'कुटज' आदि निबन्ध संग्रहों के रूप में प्रकाश में आये हैं। 'अशोक के फूल' में इक्कीस साहित्यिक निबन्ध हैं, जिनमें आत्माभिव्यंजक निबन्धों का सर्वोत्तम रूप दिखाई पड़ता है। इसमें काव्यात्मकता तथा कल्पनाशीलता के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास सम्बन्धी धारणाएँ व्यक्त हुई हैं। 'विचार और वितर्क' संग्रह के नवीन निबन्धों में साहित्य, दर्शन, संस्कृति आदि के संबंध में गहन विचार एवं नवीन व्याख्या-दृष्टि प्राप्त होती है। 'विचार प्रवाह' संग्रह में भी कुछ नये निबन्ध जोड़ दिये गये हैं। इसमें कुल इक्कीस निबन्धों और भाषणों का संग्रह किया गया है। 'हमारी साहित्यिक मान्यताएं' में इक्कीस साहित्यिक एवम समीक्षात्मक निबन्ध संग्रहीत हैं। इस संग्रह के 'संस्कृत और हिन्दी', 'हिन्दी की शक्ति', 'हिन्दी का प्रचार कैसा हो, 'रस क्या है', 'रस का व्यावहारिक अर्थ', 'साहित्य का नया रास्ता' आदि निबन्धों में द्विवेदी जी की मौलिक चिंतन पद्धति के दर्शन होते हैं। 'कल्पलता' में इक्कीस विभिन्न प्रकार के निबन्ध हैं। इन निबन्धों से द्विवेदी जी की बहुज्ञता, लेखन-शैलियों तथा व्यापक दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है। इन में साहित्य के अर्थ, स्वरूप,

उद्देश्य, प्रयोजन, उपयोगिता तथा साहित्य में नवीन प्रयोगों की समीचीनता आदि प्रश्नों पर सुचिंतित एवं मौलिक विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

आचार्य द्विवेदी ने अनेक निबन्धों में अपनी भाषा-सम्बन्धी मान्यताएँ व्यक्त की हैं और अपनी भाषा के स्वरूप का विवेचन किया है। 'नई समस्याएं, निबन्ध में वे लिखते हैं- "भाषा के मामले में हमें सावधानी से काम लेना है। हम भाषा की लस्टम-पस्टम रेल-पेल न खड़ी कर दें जो भविष्य में हमारी सभी योजनाओं के लिए घातक साबित हो। भाषा भी हमारे भावी लक्ष्य की पूर्ति का साधन है। हमें ऐसी भाषा बनानी है जिसके द्वारा हम अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षुधा-निवृत्ति का संदेश दे सकें।" आचार्य द्विवेदी ने अपने निबन्ध 'सहज भाषा का प्रश्न' में भाषा सम्बन्धी उच्च आदर्श उपस्थित किया है- "निस्संदेह मैं सहज भाषा का पक्षपाती हूँ। परन्तु सहज भाषा मैं उसे समझता हूँ जो सहज ही मनुष्य को आहार, निद्रा आदि सामान्य धरातल से ऊपर उठा सके। सहज भाषा का अर्थ है सहज ही महान बना देने वाली भाषा। वह भाषा जो मनुष्य को उसकी सामाजिक दुर्गति, अंधसंस्कार और परमुखापेक्षिता से न बचा सके, किसी काम की नहीं है। भले ही इसमें प्रयुक्त शब्द बाज़ार में विचरने वाले अत्यंत निम्नस्तर के लोगों के मुख से संग्रह किये गये हों। अनायास लब्ध भाषा को मैं भाषा नहीं कहता। तपस्या, त्याग और आत्मबलिदान के द्वारा सीखी हुई भाषा सहज भाषा है। बाज़ार की भाषा को, मोटे प्रयोजनों की भाषा को, मैं छोटी नहीं कहता, परन्तु मनुष्य को उन्नत बनाने के लिए जो भाषा प्रयोग की जायेगी, वह उससे भिन्न होगी।"

7.3.1 भाषा शैली

द्विवेदी जी की भाषा सरल और सहज है। जब जैसी आवश्यकता अनुभव हुई, भाषा भी वैसी ही हो गयी। द्विवेदी जी की भाषा का झुकाव तत्समता की ओर अधिक है, पर संस्कृत के प्रकांड पाण्डित्य के भार से भाषा बोझिल और दुरुह नहीं हो गयी है। उनकी तत्सम- प्रधान भाषा विषय के अनुरूप परिवर्तन भी ग्रहण करती है। समाज, राजनीति तथा आधुनिक समस्याओं का विवेचन करते समय उनकी भाषा का तेवर सर्वथा परिवर्तित हो जाता है।

द्विवेदी जी को शब्दों की अच्छी पहचान है। वे लिखते हैं - "शक्तिशाली साहित्यकार शब्दों की नाड़ी पहचानते हैं। वे जानते हैं कि कौन-सा शब्द कहां सौन्दर्य ले आता है और कहां भोंडापन। अद्भुत प्रयोगों और गलत-सही अर्थों वाले नाना जाति के शब्दों की पलटन खड़ी करके शब्दों के साथ खिलवाड़ करते हैं- "द्विवेदी जी की भाषा में संस्कृत तत्सम पदावली तथा सामासिक शब्दों का बाहुल्य है। विद्युद्वर्तिका, शांति-स्वस्त्ययन, निखिलानंदसंदोह, आवर्त-दर्धरतरङ्गराजि, वदतोव्याघात, आसन्द-अनुभूतिजनक, स्वेतवस्त्रधारिणी, चिन्मुखीकरण, परस्पद्धि चारुता, प्रभावस्वरतुल्यभूता, वदनचंद्र के लोघरेणु आदि शब्द उनके निबन्धों में हैं।

द्विवेदी जी स्पष्ट लिखते हैं- "मैं अन्य भाषाओं के शब्द लेने का बिलकुल विरोधी नहीं हूँ"

उनके निबन्धों में अनेक भाषाओं के शब्द आये हैं। अरबी-फारसी के तो सैकड़ों शब्द प्राप्त होते हैं—महज, ताजगी, गलतफहमी, दंगाफरोश, दकियानूसी, पुर्जे, शर्मिंदा, तरीका, नज़र, लज्जत, खबरदार, जर्रे-जर्रे, मज़दूर, कद्रदान, हुजूर, जरूर, कब्र, हैरत, मुल्क आदि।

कॉलेज, रिमार्क, रिकार्ड, ओबिल टाक, ओरेटर, पैकेट, इन्जेक्शन, गारन्टी, चैलेंज, क्रिटिक, टिपिकल, सेकेण्ड हैण्ड, डेट, मिस्टिक, इन्जिन, जर्नलिस्ट फ़ैशन आदि अंग्रेजी शब्द भी निबन्धों में आये हैं। उन्होंने अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी पर्यायवाची भी निर्मित किया है जैसे निर्णयात्मक आलोचना (जूडीशियल क्रिटिसिज़्म), वदतोव्याघात(सेल्फ कंट्राडिक्शन), मंडन शिल्प (डेकोरेशन) आत्म-पवित्रीकरण (सेल्फ प्योरीफिकेशन) आदि।

द्विवेदी जी ने यथास्थान देशज शब्दों को भी निबन्धों में ग्रहण किया है। ऐसे कुछ शब्द इस प्रकार हैं—रेलपेल, अटकलपच्चू, ठूँठ, लंडूरे, टंटा, ठूसठांस, लुढ़कती-पुढ़कती, भेड़ियाघसान, लस्टम-पस्टम आदि।

द्विवेदी जी का वाक्य-विन्यास सरल और स्पष्ट है पर आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं जटिल और मिश्र भी हो गया है। उन्होंने अधिकतर छोटे-छोटे संतुलित वाक्यों का ही प्रयोग किया है। सूत्रात्मक पद्धति भी उन्होंने कहीं-कहीं अपनायी है, उदाहरणार्थ— 'स्वर्ग को जीतने वाला कठोर धनुष जो धरती पर गिरा तो कोमल फूलों से बदल गया', 'स्वर्गीय वस्तुएं धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होतीं', 'दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है, केवल उसी को याद रखती है जिससे उसका स्वार्थ सधता है', 'सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है', 'कमजोरों में भावुकता अधिक होती है', 'जहाँ शब्द और अर्थ हार जाते हैं वहाँ गान शुरू होता है', 'शंकाशील हृदय में प्रेम की वाणी भी शंका उत्पन्न करती है', 'प्रेम संयम और तप से उत्पन्न होता है भक्ति साधना से।'

मुहावरों-कहावतों का बहुत कम प्रयोग द्विवेदी जी ने किया है। कुछ अति प्रचलित मुहावरे ही निबन्धों में मिल जाते हैं। दूर की कौड़ी लाना, भाड़ झाँकना, पते की बात कहना, पेट की मार, न ऊधो का लेना न माधो का देना, लोहा लेना, बाल की खाल निकालना, आदि मुहावरे उनके निबन्ध में आये हैं। उद्धरणों के प्रयोग से द्विवेदी जी ने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ाई है। निबन्धों में संस्कृत के उद्धरणों का बहुत अधिक प्रयोग द्विवेदी जी ने किया है और ये प्रयोग कहीं-कहीं 'उपेक्षित अतिथि की तरह बैठे हैं।' लगता है विद्वता-प्रदर्शन के लिए वे ला दिये गये हैं।

डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने आचार्य द्विवेदी की भाषा का सम्यक् मूल्यांकन किया है, वे लिखते हैं— 'मुझे उनकी विषयानुकूल, भावानुकूल भाषा को देखकर ऐसा लगता है कि वाणी आचार्य जी के समक्ष दासी की भाँति खड़ी रहती है। इस भाषाधिकार का रहस्य क्या है ? यह सोचता हूँ तो उन्हीं की यह बात सत्य प्रतीत होती है कि सहज भाषा पाने के लिए कठोर तप आवश्यक है। जब तक आदमी सहज नहीं होता तब तक भाषा का सहज होना असंभव है। स्वदेशी और विदेशी के, वर्तमान-अतीत के समस्त वाङ्मय का रस निचोड़ने पर वह सहज भाव प्राप्त होता है। यदि कहा जाये कि उन्होंने इस सत्य को अपने जीवन में उतारा है तो अत्युक्ति न होगी। यही कारण है कि कुञ्जटीकाच्छन्न, वज्रकपाट विहित, इन्द्रिय लौल्य जैसे

शब्द भी अर्थबोध में बाधा नहीं उपस्थित करते।”

7.3.2 शैली

भाषा के समान ही द्विवेदी जी की शैली भी सरल और आवश्यकतानुसार विविध रूप धारण करने वाली है। उसमें चिंतन की गम्भीर गरिमा, व्यंग्य-विनोद की वक्रता तथा भावात्मकता यथावसर विद्यमान है। व्यास और समास दोनों ही शैलियों को उन्होंने अपनाया है। अधिकतर संतुलित व्यास शैली का ही सहारा उन्होंने लिया है, पर इस शैली में अनावश्यक विस्तार या शब्दाडम्बर नहीं है। गम्भीर से गम्भीर विषय का विवेचन भी वे अति सरल ढंग से कर सकने में सक्षम हैं। साहित्य की परिभाषा देते समय द्विवेदी जी का शैली विषयक दृष्टिकोण प्रकट हुआ है—“कवि प्रतिभा के बल पर जब एक वाक्य अन्य वाक्य के साथ एक विचित्र विन्यास में विन्यस्त करता है तब एक शब्द दूसरे शब्द से मिलकर रमणीय माधुर्य की सृष्टि करता है। उसी प्रकार तद्गर्भित अर्थ भी उसके साथ होड़ करके परस्पर एक अद्भुत चमत्कार-से-चमत्कृत करते हैं। वस्तुतः ध्वनि के साथ ध्वनि के मिलन और अर्थ के साथ अर्थ के मिलन से जो परस्पर स्वर्द्धिचारुता उत्पन्न होती है, वही साहित्य है, वही कविता है।”

शैली के सभी प्रधान रूप विचारात्मक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक और वर्णनात्मक आदि आचार्य द्विवेदी के निबन्धों में दिखाई पड़ते हैं।

7.3.2.1 विचारात्मक शैली

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अधिकांश निबन्ध विचार-प्रधान शैली से युक्त हैं। विचार की साधारणतः तीन कोटियाँ मानी जाती हैं— सूक्ष्म विचारक (एक्सट्रेक्ट थिंकर), प्रत्यय विचारक (आइडिया थिंकर) और स्थूल विचारक (थिंग थिंकर)। आचार्य द्विवेदी में विचारक के प्रथम दो रूपों को देखा जा सकता है। अध्ययन का क्षेत्र उनका अत्यन्त विस्तृत है। संस्कृत, बंगला, हिन्दी और अंग्रेजी के साहित्य का गहरा मनन करने वाले द्विवेदी पर प्रभाव संस्कृत और बंगला का ही अधिक है, अंग्रेजी का अपेक्षाकृत कम।

हिन्दी के प्राचीन साहित्य में उनका मन अधिकतर रमता है—नाथों, सिद्धों, जैनियों, बौद्धों एवं निर्गुणियों की बानी में। आधुनिक साहित्य में उन्हें आकर्षित करती है रवीन्द्रनाथ और प्रेमचंद की मानवतावादी दृष्टि। ‘मनुष्य समाज को रोग-शोक, दारिद्र्य-अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचा कर उसमें आत्मबल का संचार करना ही साहित्य का मुख्य लक्ष्य मानने वाले आचार्य द्विवेदी का ध्यान भारतीय इतिहास के मुख्यतः दो ही पक्षों पर अधिक गया है—सामाजिक और सांस्कृतिक। परन्तु राजनीतिक-ऐतिहासिक गतिविधियों से उनका परिचय न हो, ऐसी भी कोई बात नहीं। दर्शनशास्त्र पर भी उनका अधिकार रहा है। कूल मिलाकर वैचारिक शैली से युक्त निबन्धों में प्रकट होने वाला उनका व्यक्तित्व बड़ा दुर्निवार, निदुमिया के प्रेम की तरह गंभीर, पर सदैव स्त्रयमान, पर्युत्सुक, महाकाल की रहस्य लीला से उन्मथित, शास्त्र को लोक से जोड़ने के लिए व्यग्र, संस्कृत

को हिन्दी पर न्यौछावर करने के लिये उत्कंठित और राष्ट्र को मनुष्य से सामंजस्य करने के लिए चिंतित है। वह मनुष्य के हर अनुभव को छेड़ता है, उसकी हर सांस्कृतिक उपलब्धि के मर्म को गुदगुदाता है और प्रकृति के हर विवर्तन को कुरेदता है और मनुष्य उसकी परम्परा और देशकाल को जोड़ने का जुगाड़ करता रहता है। द्विवेदी के निबंधों का संयोजन तंत्र इसी व्यक्तित्व का ही सहज परिणाम है इसीलिये वह सायास ढला नहीं लगता, इसी के सहारे साधारण सा बिम्ब जाने कितनी वस्तुओं को कितनी विचारधाराओं को जोड़ने का माध्यम बन जाता है।

7.3.2.2 भावात्मक शैली

द्विवेदी जी के निबन्धों में संयत भावुकता दिखाई पड़ती है। भावात्मकता और काव्यात्मकता ने उनके निबन्धों को सजीव और तरल बना दिया है। मार्मिक स्थलों पर आकर अथवा किसी कृतिकार या कृति से प्रभावित होने पर उनकी भावधारा उमड़ पड़ी है। अशोक के फूल, बसंत आ गया, आम फिर बौरा हो गये, निबन्धों में भावों की वेगवती मंदाकिनी प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है। 'अशोक के फूल' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है— 'कन्दर्प देवता के अन्य वाणों की कदर तो आज भी कवियों की दुनियां में ज्यों की त्यों है। अरविन्द को किसने भुलाया? आम कहाँ छोड़ा गया और नीलोत्पल की माया को कौन काट सका ? नवमल्लिका की अवश्य ही अब विशेष पूछ नहीं है, किन्तु इसकी इससे अधिक कदर थी भी नहीं। भुलाया गया है अशोक, मेरा मन उमड़-घुमड़ कर भारतीय इतिहास के पिछले हजार वर्षों पर बरस जाना चाहता है। क्या यह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी? सहृदयता क्या लुप्त हो गयी थी ? कविता क्या सो गयी थी ? ना, मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है।' संवेदनात्मक ओज एवं अभिव्यक्ति की तीव्रता से युक्त उनकी भावात्मक शैली अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

'अशोक के फूल', 'क्या आपने मेरी रचना पढ़ी', 'आम फिर बौरा गये', 'नाखून क्यों बढ़ते हैं ?' 'कुटज', 'जब दिमाग खाली है', बसन्त आ गया', 'मेरी जन्मभूमि', 'ठाकुर जी की बटोर', 'गतिशील चिंतन', 'सत्य का महसूल', 'पण्डितों की पंचायत' आदि आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी के भावात्मक शैली से युक्त निबन्ध हैं। लेखक के 'मन की मुक्त भटकन' इन निबन्धों में यह भाव रस उड़ेल देता है जो हमारे हृदय और मस्तिष्क को केवल लुभा ही नहीं लेता, अनेक स्थानों पर सोच में डुबोकर छोड़ भी देता है। भावात्मकता के दो स्तर स्पष्ट रूप में इन निबन्धों में दिखाई देते हैं। एक वह, जिसमें प्रलाप एवं नाटकीयता हैं तथा दूसरी वह, जो आवेगमयी है परन्तु अत्यंत आकर्षक, संयत, उच्च स्तरीय एवं संदर्भमयी है। उद्गम युगीन निबन्धों की भावात्मक शैली हा! 'अहा! 'हाय-हाय', 'धन्य-धन्य', के सम्बोधनात्मक उद्गारों से आक्रान्त थी। अन्यत्र उनके उन्मुक्त चिंतनशील, आदर्शप्रिय, परम्परा-प्रेमी, 'उदार व्यक्तित्व की ही झँकी मिलती रहती है। यह व्यक्तित्व 'अशोक के फूल' की तरह रागाकुल, शिरीष की तरह अवधूत, 'कुटज' की तरह बीहड़ मनमौजी और 'देवदारु' की तरह व्योमकेश है। वह वसंत की आगवानी के लिए सबसे आगे जाने को आतुर है, वह त्रिपुर सुन्दरी के पद-संचार की आकांक्षा में पुलकित होने वाला है। वह निदाघ

के ताप पर हंसता है, पर हल्की सी दुर्भावना के स्पर्श से कुम्हला जाता है, वह 'कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीर कर अपना भोग्य संग्रह करता है, परन्तु इसके साथ ही वह चारुस्मित है, वह मेघ के लिए प्रथम अर्ध है, वह 'मुंडकटों को पराभूत करने वाला' हिमालय की गरिमा का साक्षी है, पर अपने व्यक्तित्व को प्रेषणीय बनाने के लोभ में समझौता करने को तनिक भी प्रस्तुत नहीं। अपने निबन्धों में सामान्य विषयों को भी अत्यन्त आकर्षक ढंग से द्विवेदी जी ने प्रस्तुत किया। भावुकता की पर्तों में विचारों के बड़े बहुमूल्य खजाने उनकी ललित शैली ने दबा रखे हैं। 'आम फिर बौरा गये' में आमों पर विचार प्रकट करते करते वे मानवीय इतिहास में होने वाली लोकप्रवादों की महत्ता तक पहुँच जाते हैं। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' में मनुष्य की जन्मजात पशुवृत्ति के उद्भव विकास और संस्कार की कहानी परोसी गयी ।

'कुटज' द्विवेदी जी के लिये केवल एक वृक्ष नहीं रहता, वह अपराजेय जीवन शक्ति और संघर्षरत मानव का प्रतीक बन जाता है। 'कुटज क्या केवल जी रहा है ? वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म के उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिये अफस्रों का जूता नहीं चाटता फिरता, आत्मोन्नति के हेतु नीलम नहीं धारण करताशान से जीता है'। 'शिरीष के फूल' में शिरीष उन्हें याद दिलाता है, कालिदास और कबीर की। शिरीष की मस्ती और फक्कड़पन इनमें भी थी। शिरीष अनासक्त है, इसलिए मस्त और फक्कड़ है, कवि भी अनासक्त थे इसलिये उनमें भी वह अंदाज उतर आया। 'अशोक के फूल' और 'बसंत आ गया' में क्रमशः अशोक का समग्र भारतीय साहित्य में होने वाले स्थान का भावात्मक वर्णन है तो अन्य निबन्ध में कचनार के वृक्ष को अनफूला देखकर मन में उठने वाली भाव-तरंगों का वर्णन है। द्विवेदी जी की भावात्मक शैली भाव और भाषा की दृष्टि से जितनी समृद्ध है, संदर्भों से उतनी ही सम्पन्न है। वे साहित्य, शास्त्र, लोकसाहित्य, लोककथाओं से विभिन्न कथाओं एवं संदर्भ सूत्रों को उठाकर अपने विवेचन में, वर्णन में परोते जाते हैं। उनकी बहुज्ञता उनकी शैली का शृंगार करती है और उनका बहुमुखी व्यक्तित्व उसमें आत्मीयता का रस घोलता जाता है। गद्य काव्य की लय से युक्त ऋजु, प्रसन्न, सरल एवं आवेगमयी भाषा का उनकी शैली को परिणामकारक बनाने में बहुत बड़ा योगदान है। भाषा के इस प्रवाह में लेखक के मन के हर्ष-विमर्श, खेदादि भावों की प्रतिच्छायाओं को पानी में पड़ने वाले प्रतिबिम्बों की तरह स्पष्ट देखा जा सकता है। वे कभी आम्रमंजरी को देखकर उल्लासित हो उठेंगे-आहा, कैसा मनोहर कोरक है। बलिहारी है इस 'आम्रहरित-पांडुर' शोभा की। अभी सुगन्धि नहीं फैली है, किन्तु देर भी नहीं है। कचनार को फूला हुआ देखकर आनंदित हो उठेंगे, तो विष्णुकांता का खिलना उन्हें उत्साह और उत्सुकता से भर देगा-"कैसा मनोहर नाम है! फल और भी मनोहर है। जरा सा तो आकार होता है, पर बलिहारी है उस नील मेदुर रूप की। बादल की बात छोड़िये जरा भी पुरवैया बह गयी तो उसका उल्लास देखिये। बरसात के समय तो इतनी खिलती है कि मत पूछिये।" कभी परस्पर दो विरुद्ध बातों को आमने सामने रखकर बड़े सहज भाव से कहेंगे- "जरा तुक मिलाइये। आम्रमंजरी मदन देवता का अमोघ बाण है और बिच्छु मदन विध्वंसी महादेव का अचूक बाण है। योगी ने भोगी को भस्म कर दिया,

पर योगी का अस्त्र भोगी के अस्त्र को व्यर्थ बना रहा है। कुछ ठिकाना है इस बेतुकेपन का। परन्तु सारी दुनिया यानी बच्चों की दुनिया! इस बात को सच मानती आ रही है”।

बंगला का लालित्य और भोजपुरी मुहावरे का खड़ापन, संस्कृत की समास विदग्धता और संदर्भ-प्रचुरता तथा 'वाऊल' और नाथपंथी संतो का फक्कड़पन एक साथ घुलमिलकर एक अद्भुत रसायन निर्माण करने वाली इस भाषा में हास्य-व्यंग्य का अपूर्व योग है। द्विवेदी जी ने सर्वत्र ही उसका बड़ा सधा हुआ प्रयोग किया, परन्तु भावात्मक शैली के अन्तर्गत सम्मिलन बड़ा व्यापक प्रभाव डालता है। कभी तत्सम प्रधान संस्कृतनिष्ठ, कभी स्थानीय एवं देशज शब्दों से अलंकृत यह भाषा कुछ-कुछ वही यायावरी कल्पनाएँ, वही अप्रासंगिक प्रासंगिकताएँ, वहीं शब्दों और वाक्यों की काव्यमय अनुगूँज और लोकोक्तियों के मार्मिक प्रयोग को मिलाकर अति आकर्षक शैली प्रस्तुत करती है। वहाँ हृदय और मस्तिष्क साथ-साथ घुलमिलकर चलते हुये दिखाई देते हैं। इस क्षेत्र में उनकी शैली अपना कोई सानी नहीं रखती।

7.3.2.3 वर्णनात्मक शैली

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'शिरीष के फूल', 'आम फिर बौरा गये', 'ब्रह्माण्ड का विस्तार', 'बसन्त आ गया', 'देवदारु', 'अशोक के फूल' वे निबन्ध हैं जिनमें वर्णनात्मक शैली का भी सफल प्रयोग किया गया है। इन निबंधों में वर्णनात्मकता, भावात्मकता, कल्पना एवं विचार घुलमिलकर चलते हैं। लेखक के मन पर पड़े हुए प्रकृति के प्रभाव का अनेकामुखी रूप-चित्रण इन निबंधों में हुआ। वस्तु की वर्णन की बारीकी और सूक्ष्मता के साथ, उसके अतीत के मनोरम इतिहास एवं वर्तमान की स्थिति का जो चित्रण द्विवेदी जी ने किया, वह बेजोड़ है। यथा- 'शिरीष के वृक्ष' बड़े छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगलजनक वृक्षों को अपनी वृक्ष वाटिका की चार दीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक शिरीष भी है (वृहत्संहिता, 55/3)। अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और घने मसृण हरीतिमा से परिवेष्टित वृक्ष-वाटिका ज़रूर बड़ी मनोहर दिखती होगी। वात्सायन ने (कामसूत्र) बताया है कि वाटिका के सघन छायादार वृक्षों की छाया में झूला लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि बकुल के पेड़ में ऐसी दोलाओं को लगा देखना चाहते थे पर शिरीष भी क्या बुरा है। डाल इसकी अपेक्षाकृत कमजोर ज़रूर होती है, पर उसमें झूलने वालियों का वजन भी तो बहुत ज्यादा नहीं होता। ऐसे वर्णन में द्विवेदी कहीं-कहीं पर बड़ी मीठी चुटकी काट लेते हैं, यथा - "मैं तुन्दिल नरपतियों की बात नहीं कह रहा हूँ वे चाहें तो लोहे का पेड़ बनवा लें।" द्विवेदी की वर्णनात्मक शैली केवल ब्यौरा नहीं देती, वह उसके साथ प्रचीन परम्परा के किसी सूत्र को या किसी उदात्त विचार को भी प्रकाशित कर देती है, उदाहरण 'मेरा अनुमान है कि आम पहले इतना खट्टा होता था और इसका फल इतना छोटा होता था कि इसके फल को कोई व्यवहार में नहीं लाता था। संभवतः वह भी हिमालय के पार्वत्य देश का जंगली वृक्ष था। इसके मनोहर कोरक और आमोद दिगन्त कर देने वाला होता था। धीरे-धीरे यह फल मैदान में आया। मनुष्य के हाथ रूपी पारस से छूकर यह लोहा भी सोना बन गया है। गंगा

की सुवर्णप्रसू मृत्तिका ने इसका कायाकल्प कर दिया है। मैं आश्चर्य से मनुष्य की अद्भुत शक्ति की बात सोचता हूँ।मनुष्य इस विश्व का दुर्जय प्राणी है।’

आत्मीयता एवं भावुकता से युक्त यह शैली कल्पना के सहारे वर्णित अचल वस्तु को भी सजीव, स्पंदनशील बना देती है। हम मानो उनके अस्तित्व का अनुभव करते हैं, उन्हें प्रत्यक्ष देखते हैं। यथा, “अशोक किसी कुशल अभिनेता के समान झम से रंगमंच पर आता है और दर्शकों को अभिभूत करके खप-से निकल जाता है।’

भाषा द्विवेदी जी की वर्णनात्मक शैली में सरल, प्रवाही एवं संयत विचारों से युक्त है। भावात्मकता के कारण उसमें क्षिप्रता एवं गति है, तो कल्पना के कारण वह आकर्षक एवं रमणीय भी बन गयी है। मूर्ति विधायिनी शक्ति से युक्त यह शैली वर्णन की यथा-तथ्यता, कल्पना की दूरगामी उड़ान, एवं सहज विचार तरंगों के कारण उच्चकोटि का काव्यात्मक आनन्द प्रदान करती है।

7.3.2.4 व्यंग्यात्मक शैली

व्यंग्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरा है। वह तीखा नहीं है, पर मार्मिक अवश्य है। साहित्य और समाज के उत्थान में रोड़ा अटकाने वाले सारे संकीर्ण तत्त्व आचार्य द्विवेदी के व्यंग्य के शिकार हुये। वे समालोचक जो बिना पुस्तक पढ़े समालोचना लिख सकते हैं, उनका लक्ष्य बने हैं। अनेक स्थानों पर उन्होंने समालोचकों की खबर ली। “बहुल परिश्रम करने के बाद मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दी में वस्तुतः रहस्यवादी कवि हैं ही नहीं। यदि कोई रहस्यवादी कहा जा सकता है तो वह निश्चय ही एक श्रेणी का आलोचक है। ऐसे रहस्यवादी आलोचकों की आलोचनाओं का पर्दाफाश भी द्विवेदी ने बड़ी तीव्रता के साथ किया है— “आसमान में निरन्तर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं और मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हंसी खेल नहीं है पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकंपित! यह क्या कम साधना है ? “कुछ समालोचक तो लज्जित होना जानते ही नहीं। वे हर गली, कूचे में अपनी विशेष राय और अपने सौ प्रतिद्वन्द्वियों की बात गर्व के साथ सुनाते हैं। पर कुछ जो शीलवान हैं, इस बात से शर्मिदा भी होते हैं और इसी लज्जा से बचने के लिए वेदान्त से लेकर कामशास्त्र तक का हवाला दिया करते हैं।” इन पंक्तियों में समालोचकों की वृत्तियों पर गहरा कटाक्ष है।

हास्य उनके निबन्धों में अत्यंत संयत रूप में प्राप्त होता है। वे मीठी चुटकियाँ काटते हैं, जो गुदगुदा देती हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है “जिन पण्डित जी की बात लिख रहा हूँ उनकी विद्वता और बहुश्रुतता का मैं कायल हूँ और इसीलिये मुझे थोड़ा-थोड़ा गर्व होता है कि मेरा ज्ञान इतने बड़े पण्डित के ज्ञान में थोड़ा सा अंश और जोड़ सकता था।” मुझे कचनार के फूल की ललाई बहुत भाती है। सबसे बड़ी बात है कि इन फूलों की पकौड़ियाँ भी बन सकती हैं। “आप दुर्दान्त

डाकू के दिल में विनोद-प्रियता भर दीजिए, वह लोकतन्त्र का डीलर हो जाएगा, आप समाज सुधार के उत्साही कार्यकर्ता के हृदय में किसी प्रकार का इंजेक्शन दे दीजिये, वह अखबारनवीस हो जाएगा। यद्यपि कठिन है, फिर भी किसी युक्ति से उदीयमान छायावादी कवि की नाड़ी में थोड़ा विनोद भर दीजिए, वह किसी फिल्म कम्पनी का नामी अभिनेता हो जाएगा”। वस्तुतः द्विवेदी की हास्य-व्यंग्यात्मक शैली स्वभावतः संयत एवं शालीन दिखायी पड़ती है। उद्देश्य उसका जीवन के सत् पक्ष का रक्षण करना एवं असत् पक्ष का जनता को परिचय करा देना ही है। पर उसमें तीव्रता या तिक्तता से साधारण तौर पर काम नहीं लिया गया।

7.4 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी की भाषा शैली सफल ही नहीं आदर्शपूर्ण भी है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता या बनावटीपन नहीं है। उसमें गाम्भीर्य, शिष्टता, सरलता के साथ-साथ संयत व्यंग्य का सुन्दर समावेश मिलता है। अतः यह कहना असंगत न होगा कि उन्होंने अपने निबन्धों में समस्त प्रचलित शैलियों का समन्वय करते हुए एक अभिनव तथा आदर्श शैली प्रस्तुत की है जो परवर्ती निबन्धकारों द्वारा गृहीत हुई है।

7.5 कठिन शब्द

दुर्दान्त, उदीयमान, आवेगमयी, विवर्तन, दुनिर्वार, उन्माथित, परमुखापेक्षिता, वैयक्तिक

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. भाषा एवं शैली का अर्थ समझाते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों पर अपने विचार रखें ।

.....

.....

.....
.....
.....
.....
प्र3. शैली कितने प्रकार की होती है, शैली के सन्दर्भ में हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के विचार स्पष्ट करें ।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० चौथी राम यादव का साहित्य
2. हिन्दी का ललित निबन्ध और आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० विदुषी अग्रवाल
3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में सामाजिक चिंतन – डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
4. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और उनका साहित्य – डॉ० राजेन्द्र दीक्षित
5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त वइसैया
6. हिन्दी निबन्ध गणपति चन्द्रगुप्त
7. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ० ज्ञानेन्द्र वर्मा
8. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ० हरदयाल

पाठ्यक्रम में निर्धारित निबन्धों पर प्रश्न

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 निबंधों पर निर्धारित प्रश्न

8.3.1 अशोक के फूल

8.3.2 बसन्त आ गया है

8.3.3 भारतीय संस्कृति की देन

8.4.3 आपने मेरी रचना पढ़ी

8.4 सारांश

8.5 कठिन शब्द

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

8.1 उद्देश्य

- हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में उभरते ज्वलन्त प्रश्नों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- द्विवेदी के निबन्ध में लोक-कल्याण की भावना से जुड़े प्रश्नों से परिचित हो सकेंगे ।

8.2 प्रस्तावना

अध्याय सात में आपने जाना कि भाषा विचार-विनिमय का वह विशिष्ट माध्यम है जो न केवल मानव मन की गहन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में समर्थ है अपितु भाषा के अभाव में साहित्य रचना की कल्पना असम्भव है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के शीर्षस्थ निबन्धकार हैं। उनके निबन्ध जिस तरह हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है उसी प्रकार उन्होंने भाषा सम्बन्धी मान्यताएं अपने निबन्धों में व्यक्त की है। अध्याय सात में आपने निबन्धों के सन्दर्भ में द्विवेदी जी की भाषा शैली का अध्ययन दिया। प्रस्तुत आलेख (आठ) में आप पाठ्यक्रम में निर्धारित निबन्धों का गहन अध्ययन करेंगे।

8.3 निबन्धों पर निर्धारित प्रश्न

8.3.1 अशोक के फूल

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी की आत्मा भारत की प्राचीन संस्कृति में रमती है, साथ ही उनकी प्रतिभा के साथ नवीनता का सामंजस्य कर देने की क्षमता रखती है। छोटी-से-छोटी वस्तु में भी बड़ी बातों के दर्शन करने और कराने की द्विवेदी जी की विद्वता विलक्षण है। 'अशोक के फूल' में हज़ारी प्रसाद जी ने अशोक के लाल धवल फूलों को कई प्रकार से आँका है। उसके साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक किसी भी दृष्टिकोण को उन्होंने अछूता नहीं छोड़ा है। फूल को आधारशिला मान कर लेखक अपने पाठकों को कभी तो कालिदास के काल में ले जाते हैं, कभी बुद्धकालीन युग में, कभी मुग़लों के जमाने में, तो कभी आधुनिक काल में अनायास ला खड़ा कर देते हैं। लेखक का मन यह देखकर दुःखी हो उठता है कि अशोक के फूल का आज वह सम्मान नहीं हो रहा है जो किसी समय उसे प्राप्त था। कालिदास के काव्य में बौद्ध, शैव एवं शाक्त धर्म में यक्ष, किन्नर, गन्धर्वों में, मदनोत्सव में और इस प्रकार भारतीय धर्म एवं संस्कृति में सर्वोच्च स्थान पाने वाले अशोक पुष्प की आज की दयनीय अवस्था को देख द्विवेदी जी दुःखी होते हैं और भारतीयों की हृदयहीनता पर तरस खाते हैं। आगे मानव जाति की दुर्दान्त निर्मम धारा, जो अनादि काल से न जाने कितने धर्माचारों तथा संस्कारों को धोती-बहाती निरन्तर बढ़ती चली जा रही है, पर दृष्टिपात करते हुए द्विवेदी जी को लगता है कि संसार स्वार्थी है, उसे अपनी जिजीविषा अर्थात् जीने की प्रवृत्ति से मतलब है। यह भी सत्य है कि अशोक उस सामन्तशाही का प्रतीक है जो श्रमिकों के श्रम-कण से पुष्ट होकर इतराती थी और सामन्तशाही के ढह जाने पर अशोक को भी अपना शीर्ष-स्थान गंवाना पड़े तो यह स्वाभाविक है ही। आखिर अशोक तो आज भी बड़ी मस्ती से झूम रहा है, उसका कुछ नहीं बिगड़ा है। बदलती है मनुष्य की मनोवृत्तियाँ अतः उदास होना बेकार है।

अशोक का फूल सचमुच महान् है, तभी तो कामदेव ने उसे अपने पाँच बाणों में से एक मानकर अपने तूणीर में स्थान दिया था। ऐसा महत्वपूर्ण पुष्प आज एकदम भुलाया गया है – यह सोचकर लेखक उदास होता है।

अशोक के फूल ने भारत के साहित्य एवं जीवन में कालिदास के काल में पदार्पण किया। कालिदास ने अशोक को सुन्दरियों के नूपुर वाले चरणों के मृदु आघात से फूलने, उनके गालों पर कर्णावंतस के रूप में झूलने और उनकी नील अलकों से शोभा में डोलने की बात कही। किन्तु मुसलमानी सभ्यता एवं संस्कृति ने इस सुन्दर फूल को साहित्य के सिंहासन से चुपचाप उतार दिया। साहित्य के रंगमंच पर सफल अभिनेता की भाँति ज़म से प्रकट होकर दर्शकों को अभिभूत करने वाला फूल खप से निकल गया और आज बिलकुल विस्मृत हो गया। इसका यही अर्थ निकलता है कि सहृदयता लुप्त हो चली है। विडम्बना तो यह है कि आज कल एक निफूला तरंगयित पत्तों वाला वृक्ष अशोक कहलाता है। अशोक का इससे बढ़कर अपमान और क्या हो सकता है ?

भारतीय धर्म में, साहित्य एवं शिल्प में अद्भुत प्रभाव डालने वाले अशोक ने ईस्वी सन् के आस-पास अवतार लिया था। उस समय तक गन्धर्वों ने भारतीय धर्म को एक नया मोड़ दिया था। गन्धर्व आर्यतर जाति वाले रहे। कन्दर्प और गन्धर्व एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न उच्चारण हैं तथा कन्दर्प और कामदेव एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। शिव से पिटने पर भी, बुद्धदेव से हारने पर भी, कन्दर्प ने नये अस्त्रों का प्रयोग करते करते अन्त में अशोक को अस्त्र बना लिया और बौद्ध धर्म को घायल कर वज्रयान को, शैव को अभिभूत कर कौल साधना की और शाक्त को नत कर कापालिक धर्म की प्रतिष्ठा कर दी।

भारत भूमि की यह विशेषता है कि इसमें विविधता में एकता है। आज का भारत, आज की हिन्दू रीति-नीति, उनके आर्य एवं आर्यतर उपादानों का अद्भुत मिश्रण है। प्रत्येक पशु और पक्षी का अपना अलग इतिहास है। अशोक की भी अपनी स्मृति-परम्परा है। वामन पुराण के अनुसार ज्यों ही कामदेव ने शिव पर बाण फेंका त्योंही वे स्वयं राख बन गये और उनका धनुष टुकड़े-टुकड़े होकर जमीन पर गिरा उसकी मूठ चम्पा में, नाहस्थान मौलसिरी में, कोटि देश पाटल-पुष्प में, मध्य देश चमेली में तथा निम्नतर कोटि बेला के पुष्पों में परिणत हो गए। यह घटना सम्भवतः पुराणकार की कल्पना है किन्तु एक निश्चित काल के पूर्व इन फूलों की चर्चा हमारे साहित्य में मिलती नहीं है। स्पष्ट है कि ये फूल हमें सोमरस की भाँति गन्धर्वों की ही देन है।

प्राचीन साहित्य में यक्ष, किन्नर, गन्धर्व आदि अपदेवता माने गये हैं। बौद्ध साहित्य तथा महाभारत इसका प्रमाण है। वृक्षों के अपदेवता यक्षों के पास स्त्रियाँ सन्तानकामिनी होकर जाया करती थीं। साँची, भरहुत तथा बोधगया के स्तूपों पर उत्कीर्ण इन स्त्रियों की नंगी मूर्तियाँ इसकी गवाही देती हैं। अशोक इन सब वृक्षों में रहस्यमय रहा। परवर्ती धर्मग्रन्थों के अनुसार चैत्र शुक्ल अष्टमी के दिन व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों का भक्षण करने से स्त्रियों की सन्तान कामना फलवती होती है।

आर्यों का संघर्ष, असुरों दानवों, दैत्यों तथा राक्षसों से हुआ। वे आर्यों के प्रभुत्व को अस्वीकार कर देने वाली गर्वीली जातियाँ थी, किन्तु यक्ष, किन्नर, गन्धर्वों का आर्यों के साथ संघर्ष कभी नहीं हुआ। आर्यों के साथ मित्रता को बनाये रखने के कारण परवर्ती साहित्य में इनका उल्लेख बड़े सम्मान के साथ किया गया। हिमालय से सम्बन्धित रहने वाली ये जातियाँ शान्ति-प्रिय होने के साथ धनी भी थीं।

अतः विलासिता में डूबी रहती थीं। जो हो, अशोक वृक्ष की पूजा इन्हीं गन्धर्वों और यक्षों की देन है। पूजा वृक्ष के अधिष्ठाता कन्दर्प देवता की होती थी। 'मालविकाग्निमित्र', 'रत्नावली', आदि नाटकों में मदनोत्सव का बड़ा सरस एवं मादक वर्णन मिलता है। अशोक के लाल स्तम्भ आज भी उसी पुराने सुनहले वातावरण का मूक वर्णन करते हैं।

अशोक का फूल उस सामन्त सभ्यता की परिष्कृत रूचि का प्रतीक है जो साधारण जनो के श्रम-कर्मों से अपने को पुष्ट करती थी। अतः उस सामन्तशाही के साथ अशोक का भी अधः पतन हुआ तो वह स्वाभाविक है। मानव जाति की धारा अनादिकाल से अनेकानेक धर्माचारों, संस्थाओं आदि को आत्मसात् करते हुए अबाध-गति से बह रही है। गंगा की धारा की भाँति उसे भी पवित्र माना जाता है। महाकाल के प्रत्येक पदाघात से पृथ्वी बदलेगी, विकृत होगी और नवीन बनेगी।

द्विवेदी जी अनुभव करते हैं कि आखिर अशोक के लिए उदास होना बेकार है। अशोक तो आज भी उसी मस्ती से हंस रहा है और झूम रहा है उसका कुछ भी तो नहीं बिगड़ा। बिगड़ी है केवल मानव की मनोवृत्ति। पण्डिताई बोझ लेकर अशोक को देखने वाला उदास होता है। पण्डिताई तो सरल जीवन दर्शन में बाधक बनती है। कालिदास ने अपने ढंग से अशोक का मज़ा लिया तो लेखक अपने ढंग से ले सकते हैं।

8.3.2 बसन्त आ गया है

"बसन्त आ गया है।" में बसन्तागम के प्राकृतिक वैभव का उल्लेख करते हुए शान्तिनिकेतन में स्थान-स्थान पर लगे विभिन्न वृक्षों व पुष्पों के पौधों को एक-एक कर देखते हुए लेखक उनका परीक्षण कर रहा है। लेखक मानता है कि न तो वसन्त का आना कोई नई बात है न ही कोई क्रान्तिकारी घटना। प्रकृति का नियम है - परिवर्तन। उसी परिवर्तन के अन्तर्गत यदि पतझड़ आता है तो वसन्त भी आयेगा ही। पतझड़ और वसन्त मनुष्य को बताते हैं कि जीवन में समय कभी एक-सा नहीं रहता। कभी पतझड़ की भाँति सब कुछ कर जाता है, तो कभी खुशियों का आगमन मन में बसन्त की तरह उमँग उत्पन्न करता है। लेखक का जिज्ञासु मन देखता है कि बहुत से वृक्ष ऐसे हैं जिन्हें बसन्त के आगमन की या तो सूचना ही नहीं मिली या उनके भीतर का आलस्य उन्हें बसन्त का स्वागत करने के लिए तैयार ही नहीं कर रहा। शिरीष ऐसा ही एक वृक्ष है। किसी वामाचारी तान्त्रिक की भाँति वह भी लगता है जैसे सुन्दर समाज के बदले शमशान वास ही पसन्द करता है। इसी प्रकार पुष्पों के पौधों में केदार और मल्लिका की स्थिति भी कोई आशाप्रद नहीं है। बात यह है कि आसपास के क्षेत्र में जितने भी पौधे हैं, उन सभी की स्थिति भिन्न-भिन्न है, मौसम जबकि सभी के लिए एक-सा बदला है, यही लेखक के आश्चर्य का कारण है।

उक्त पौधों के अतिरिक्त कुछ और पौधे भी इस प्रकार के हैं जो या तो विपरीत परिस्थितियों में भी अपने भीतर की जीवनी शक्ति के कारण रस-युक्त बने रहते हैं या बारह महीने बसन्त के रंग में ही रंगे रहते हैं। अमरूद इसी प्रकार का पौधा है। लगता है जैसे किसी योगी की

तरह इस महाशय ने योग धारण कर लिया हो, जो बारह महीनों एक से ही बने रहते हैं। न विपरीत से दुःखी, न अनुकूल से खुश। "उन्मनि" की अवस्था में पहुँचें हुए साहब सदा मस्त बने रहते हैं। नीम की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है। यद्यपि उसमें बसन्त से लेकर अभी तक कोई उल्लास नहीं दिखलाई दे रहा, परन्तु उसकी रस-युक्त शाखाएँ उसके भीतर की जीवनी शक्ति तथा सुखद भविष्य की आशा का स्पष्ट संकेत दे रही हैं। जेठ मास में कोमल से पौधे का मुस्कुराना बतलाता है कि जीवन में तप की अग्नि में गलकर ही कुन्दन बना जा सकता है। छोटे से तृण का पाषाण की छाती चीरकर अँकुरित होना उत्कल जिजीविषा का सन्देश देता है। इस प्रकार प्रकृति मनुष्य को परोक्षतः जीवन के अर्थ समझाने का दायित्वपूर्ण कार्य करती है। आलोच्य निबन्ध में भी महुआ और कर्णिकार तो जैसे परोक्षतः इसी बात का प्रतीक हैं कि कठिन परीक्षाओं में से निकलने के बाद ही व्यक्ति स्वर्ण से कुन्दन बनता है। दूसरे शब्दों में, सौन्दर्य की कसौटी तप होता है भले ही कर्णिकार पर वसन्त के लक्षण जेठ के होने तक दिखलाई देने लगते हैं, परन्तु फिर भी कालिदास को वह इसलिए प्रिय रहा है कि जीवन के कठिन संघर्षों में से निकलकर ही खिलता है। जेठ के महीने में जब सारी धरती व सारी प्रकृति आग में झुलसती है, तब कर्णिकार पर वसन्त का सौन्दर्य आता है और वह उन विपरीत परिस्थितियों में मुस्कुराते हुए मनुष्य को भी अपने भीतर उसी प्रकार की जिजीविषा व इच्छाशक्ति के विकसित करने की प्रेरणा देता है। कदाचित् इसीलिए वह कालिदास जैसे उच्च कवि के सम्मान योग्य बना है। प्राकृतिक परिवर्तन के माध्यम से मनुष्य में विस्मृत चेतना और आत्मगौरव, विलुप्त आत्मविश्वास पराधीनता के वातावरण में सुप्त जिजीविषा को उदबुद्ध करने का प्रयास है।

बसन्त आगमन के पश्चात् भी वृक्षों व पौधों के खिलने की भिन्न प्रकृति को देखकर एक प्रश्न लेखक को व्याकुल बना रहा है कि बसन्त का सम्बन्ध किससे है ? यदि बसन्त का सम्बन्ध मात्र वातावरण से होता, तो समूची प्रकृति एक ही वातावरण के अन्दर एक सी खिलती और महकती। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। एक खिलता है तो दूसरा अभी भी कंकाल की तरह ढूँढ़ है। बसन्त का सम्बन्ध पौधे के स्वास्थ्य या आकार से भी नहीं माना जा सकता क्योंकि लेखक के इस धारणा को उसके आँगन में ही खिले कचनार के वृक्ष निर्मूल बना देते हैं। एक कचनार का वृक्ष लेखक के पड़ोस में है। कमजोर और मरियल सा, पत्ते भी नहीं हैं, परन्तु फूलों से लदा हुआ है दूसरा वृक्ष स्वयं लेखक के द्वार पर है, स्वस्थ और सबल, परन्तु कुल तीन फूल ! संधालबाला कंचनार के फूलों को कबरीबंद बालों में खोसकर संकेत देती है कि कला की सार्थकता उसके उपयोग में है जीवन से जुड़ने में है। इसी प्रकार हिन्दी - भवन के आँगन में लगी हुई "विष्णुकान्ता" नामक घास का उदाहरण भी लिया गया है आकार की दृष्टि से देखें तो बिल्कुल नवजात शिशु की सी अवस्था। परन्तु यौवन ऐसा कि फूट-फूट निकलता है इसके बारे में आचार्य द्विवेदी लिखते हैं। "बादल की बात छोड़िये, जरा सी पुरवैया बह गई तो इसका उल्लास देखिए। मैं सोचता हूँ कि इस नाचीज लता को सन्देश कैसे पहुँचता है।" और वही पलाश भी शायद अपने भीतर की

उमंग से ही जान पाता है कि बसन्त आ गया है, तभी वह ऐसे फूलता है कि सामान्य व्यक्ति भी उसे देखकर ईर्ष्यालु हो जाए।

इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरणों से यह निश्चित हो जाता है कि बसन्त का सम्बन्ध न तो वृक्ष के आकार से है और न ही उसके स्वास्थ्य से। वस्तुतः बसन्त तो कहीं व्यक्तिगत अनुभूति की चीज है। भीतर की उमंग की अनुभूति ही उसे जन्म देती है। जिस प्रकार व्यक्ति का उल्लसित मन उसके चहकने का कारण है, उसी प्रकार पौधों में भी उनके भीतर की उमंग और उनका उल्लास भाव ही उनके खिलने अथवा मुस्कुराने का कारण बनता है। प्रस्तुत निबन्ध द्वारा लेखक इससे भी आगे बढ़कर यह स्थापित करना चाहता है कि वास्तव में उमंग अथवा उल्लास से भी अधिक महत्वपूर्ण चीज़ होती है मनुष्य की जिजीविषा अथवा उसकी इच्छा शक्ति। हमारी जिजीविषा ही हमें अवरोधों से टकराने के लिए और जीवन की कटुताओं से ऊपर उठकर निरन्तर उर्ध्वमुखी व गतिशील बने रहने के लिए प्रेरित करती है। द्विवेदी जी ने सहज ही यह वैचारिक सूत्र निष्कर्ष रूप में दिया है। "बसन्त आता नहीं, ले आया जाता है। जो चाहे और जब चाहे अपने पर ले आ सकता है।" बसन्त अर्थात् पुष्पन-पल्लवन जिजीविषा की सामर्थ्य पर निर्भर करता है। इस प्रकृति से ही मनुष्य ने जीने की कला और टकराने का आत्मविश्वास सीखा है। इस दृष्टि से प्रकृति मनुष्य के लिए सदा प्रेरणादात्री रही है। प्रस्तुत निबन्ध का विषय परोक्षतः हमें यही प्रेरणा दे रहा है। हमें निरन्तर गतिशील रहना है। यदि हम उससे उक्त बातों में प्रेरणा नहीं ले सकते, तो प्रकृति से हमारे संसर्ग का कोई लाभ नहीं। फिर तो भीतर का बुखार ही बाहर आएगा, जो हमारी बीमार मानसिकता व सोच का द्योतक होगा।

8.3.3 भारतीय संस्कृति की देन

आलोच्य निबन्ध में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति से अभिप्राय, संस्कृति और सभ्यता का स्वरूप तथा भारतीय संस्कृति की देन पर चर्चा की है। आचार्य द्विवेदी ने संस्कृति को भाषाबद्ध करते हुए स्वीकार किया है कि मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति हैं। अन्यत्र एक स्थान पर उन्होंने अविरोधी सत्यों के समुच्चय को संस्कृति स्वीकार किया है जब हम उनके विचारों का विश्लेषण करते हैं, तो देखते हैं कि उनकी दृष्टि में अविरोधी सत्य और श्रेष्ठ साधना में कोई अंतर नहीं है। वस्तुतः जो सत्य सर्वसम्मत, निर्विवादित तथा सर्वस्वीकृत होता है, वही वास्तविक सत्य होता है और उसी को हम अविरोधी सत्य कहते हैं। इतना ही नहीं, यही अविरोधी सत्य मनुष्य द्वारा आविष्कृत अथवा प्राप्त ऐसी उपलब्धि है, जिसे हम मनुष्य की श्रेष्ठ साधना के रूप में भी पहचान सकते हैं। इस प्रकार मनुष्य द्वारा प्राप्त अविरोधी सत्य ही उसकी श्रेष्ठ साधनामूलक उपलब्धि है और उन्हीं का सम्मूचित रूप उसकी संस्कृति कहलाता है। संस्कृति के स्वरूप की व्याख्या करते हुए सिद्ध किया है कि "संस्कृति किसी देश विशेष या जाति विशेष की अपनी मौलिकता नहीं हो सकती, दूसरे शब्दों में लेखक मानता है कि सारे संसार के मनुष्यों की एक सामान्य संस्कृति हो सकती है। निस्सन्देह अभी मनुष्य उस सामान्य मानव-संस्कृति को मूल रूप

नहीं दे पाया है, परन्तु निश्चित रूप से उसने संस्कृति के उन महान तत्वों को अपने भीतर अलग-अलग ढंग से अनुभव किया है। मनुष्य चित में अनुभूति के धरातल पर उनका विद्यमान होना ही उसके अस्तित्व का प्रमाण है। विभिन्न जातियों द्वारा अनुभूत तथा प्राप्त इन महान तत्वों का मिश्रण ही अपने अविरोधी स्वरूप के कारण एक दिन सामान्य मानव संस्कृति के निर्माण का आधार बन जायेगा। हमें नित्य की मार-काट, नोंच खसोट और झगड़ों आदि छोटे-छोटे अवरोध को पीछे धकेल कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना है। पारस्परिक भेद भाव को भूलाकर अपने – अपने अंश सत्यों के मिश्रण से व्यापक सत्य को पाते जायेंगे, यही हमारा तथा किसी भी संस्कृति का वास्तविक लक्ष्य है।

संस्कृति की चर्चा करते हुए लेखक 'मनुष्य की जय यात्रा' की बात करता है। उनका मानना है कि मनुष्य ने आदिम युग के उसी समय अपनी जय यात्रा आरम्भ कर दी थी, जिस दिन उसने जड़ता के प्रति विद्रोह करके अपने चेतन और विवेकशील होने का प्रमाण दिया था। उसी दिन मनुष्य एक ऐसी यात्रा के लिए निकल पड़ा था, जिसका लक्ष्य मनुष्य को मनुष्यता की पराकाष्ठा तक पहुँचाना था। इसी यात्रा को लेखक "मनुष्य की जय यात्रा" के नाम से सम्बोधित करता है। कलान्तर में मनुष्य ने प्रकृति के विधान "जो जैसा है उसे वैसा ही" मान लेने के बदले "जैसा होना चाहिए" की अपनी इच्छा उस पर लाद दी। सृष्टि के इतिहास में यह निश्चित ही बड़ी घटना थी। इस घटना के बाद मनुष्य ने अपने लिए उन आदर्शात्मक स्थितियों, श्रेष्ठ साधनाओं तथा विरोधी सत्यों के समुच्चय के रूप में अन्तिम लक्ष्य की खोज शुरू की, जिसे उसकी जय यात्रा ने या दूसरे शब्दों में कहें तो "संस्कृति की धारा" ने खोजना अपना एक मात्र लक्ष्य बना लिया। इस प्रकार मनुष्य की जय यात्रा वस्तुतः उसकी सांस्कृतिक यात्रा का ही दूसरा नाम है।

मनुष्य की पहली उपलब्धि थी जब उसने जड़ता के प्रति विद्रोह करके चेतनाशील होने का परिचय दिया। उसकी दूसरी उपलब्धि थी कि उसने प्रकृति के विधान को चुनौती देकर अपनी इच्छा को महत्त्व दिया। अपनी जय यात्रा के तीसरे चरण में मनुष्य ने विवेकशील और ज्ञानवान होने का प्रमाण देते हुए स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा आरम्भ की। स्थूल से हमारा अभिप्राय मनुष्य के भौतिक जीवन से है। अपनी समस्त आवश्यकताओं और विवशताओं को दोषहीन बनाने के लिए, धर्म-युक्त बनाने के लिये तथा किसी भी प्रकार की पाशिवकता से मुक्त रखने के लिए, उसने समाज में दंड और पुरस्कार की व्यवस्था की, जिसे मनुष्य की सभ्यता कहते हैं। इस प्रकार सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों अथवा स्थूल आवश्यकताओं को सभ्य तरीके से अर्जित करने का दूसरा नाम है। स्थूल के साथ सूक्ष्म तत्वों की खोज करते हुए अन्तिम सत्य तक पहुँचने का प्रयास भी मनुष्य ने किया। इसी प्रयोजनातीत यात्रा में मनुष्यता छिपी थी, यही उसके विवेकशील होने का प्रमाण था और यही उसकी संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति की निर्माण-प्रक्रिया में अनेक जातियों के सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात् करके जिन समन्वित किन्तु अविरोधी श्रेष्ठ साधनाओं को जन्म दिया, वह अपने में इतनी अद्भुत

अनुपम और ज्ञान के सूक्ष्म तत्वों से युक्त थीं उन्होंने अपने प्रचार – प्रसार द्वारा समस्त विश्व को अभिभूत कर दिया । यहाँ का दर्शन, धर्म, अध्यात्म, नैतिकता और सौन्दर्यपरक मूल्य समस्त विश्व को प्रेरणा देने की क्षमता रखते थे। भारतीय संस्कृति की देन में भारतीय दर्शन का स्वरूप विश्व की दार्शनिक सोच से नितान्त भिन्न रहा है। वस्तुतः पाश्चात्य दर्शन मनुष्य के विचारों का वह शास्त्र है जो "आश्चर्य" से प्रारम्भ होता है और तर्क द्वारा उसकी व्याख्या करने का प्रयास करता है। जबकि भारतीय दर्शन दुःख की व्यावहारिक सत्ता की व्याख्या से प्रारम्भ होता है। और उसके निराकरण के लिए धर्म के अन्तर्गत साधनामार्ग की विवेचना से सम्पन्न होता है। इस प्रकार यहाँ की संस्कृति ने दर्शन और धर्म की ऐसी मिश्रित "दृष्टि" विश्व को दी है जिससे समस्त विश्व का इस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन हुआ है।

विभिन्न भारतीय साधना मार्गों में अन्तर देखने वाले लोग यहाँ के विभिन्न सम्प्रदायों में एक उद्गम स्रोत को नहीं पहचान पाते । जबकि हमारे यहाँ की विभिन्न साधना पद्धतियाँ अपने अपने ढंग से शरीर, प्राण और मन को संयत करने का निर्देश देती हैं। 'योग' की अवधारणा भी भारतीय संस्कृति की देन है। इसी योग की प्रक्रिया को अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा सम्पन्न करके अन्तःकरण शुद्ध तथा संयमित किया जाता है। अतः हमारी संस्कृति में योग –साधना के साथ – साथ अभ्यास और वैराग्य के महत्व को भी बराबर समझा गया है। निस्सन्देह इन्द्रिय संयम की विधि अभ्यास पर ही निर्भर करती है, परन्तु हमारे यहाँ के चिन्तक यह मान कर चलते हैं कि अभ्यास के साथ वैराग्य का होना भी आवश्यक है क्योंकि अकेला अभ्यास तो एक बार साधक को आन्तरिक शुचिता तक ले जायेगा, परन्तु संसार के प्रति बौद्धिक वैराग्य न होने की स्थिति में उसके पुनः माया ग्रस्त होने की सम्भावना बनी रहेगी। वस्तुतः वैराग्य साधक को मात्र संसार से ही विमुख नहीं करता अपितु उसकी विषय-वासनाओं के प्रति उत्सुकता को भी शान्त करता है और अन्तात्मा की शुचिता को तथा परमात्मा के चिन्तन को साधक के भीतर स्थायी स्थान दिलवाता है।

भारतीय संस्कृति की सबसे विलक्षण उपलब्धि है मनुष्य जीवन को विभिन्न ऋणों में बाँधना। ये तीन ऋण हैं—देवऋण, ऋषि ऋण और पितृऋण। मनीषियों के अनुसार, मनुष्य के पैदा होते ही प्रकृति द्वारा वायु, जल, सूर्य आदि सभी पदार्थ उपलब्ध हो जाते हैं जो जीवन के लिए आवश्यक हैं। अतः हम देवताओं के ऋणी हैं। इस ऋण से मुक्ति का उपाय है कि हम देवताओं द्वारा प्रदत्त समस्त पदार्थों व तत्वों को बाँटकर ग्रहण करें व उनको यथा सम्भव शुद्ध तथा सुन्दर बनाए रखने का प्रयास करें । इस संसार में जन्म लेने के साथ ऋषियों के भी ऋणी बन जाते हैं क्योंकि अनेक विद्वानों और वैज्ञानिकों की आविष्कृत ज्ञानराशि को सहज ही पा जाते हैं। उनके इस ऋण से उऋण होने के लिए हमारा कर्तव्य है हम ज्ञान की इस धारा की रक्षा करें और इसे आगे प्रसारित-प्रचारित करने में सहयोग दें। तीसरा ऋण मनुष्य पर पिता का होता है। मनीषियों का मानना है कि पैदा होते ही मनुष्य अपने सम्पूर्ण शरीर और इन्द्रियों को पा सकता है इसलिए पितृऋण से मुक्ति पाने का उपाय सन्तान उत्पन्न करना और उन्हें शिक्षित बनाकर समाज के हाथों

सौंप जाने को बताया गया है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति में उक्त तीन ऋणों का इतना महत्वपूर्ण प्रावधान है कि इनसे मुक्त हुए बिना साधना भी सम्भव नहीं है। वहीं अहिंसा और मैत्री दो अन्य मूल्य ऐसे हैं जिनका विश्व में प्रचार और प्रसार का श्रेय भारतीय संस्कृति को प्राप्त है। बौद्ध सम्प्रदाय ने इसी देश की सीमाओं से निकलकर अहिंसा और मैत्री का सन्देश विश्वभर में दिया। जिसे आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने पुनः नव प्राण प्रदान किया। इसी प्रकार हमारा धर्म-विज्ञान, हमारा मूर्ति और मन्दिर-शिल्प, हमारा साहित्य, हमारी चिकित्सा पद्धति और ज्योतिष शास्त्र विश्व भर में न केवल प्रचारित हुए हैं अपितु सम्मानित भी हुए हैं। निस्सन्देह हमारी संस्कृति ने संसार से उन श्रेष्ठ विचारों और परम्पराओं को भी निस्संकोच ग्रहण किया है, जिन्होंने मनुष्यता को बचाने और आगे बढ़ाने में अपना थोड़ा सा भी सहयोग दिया है। इस प्रकार प्रस्तुत निबन्ध अपने सीमित आकार में भारतीय संस्कृति की देन के नाम पर कतिपय सर्वश्रेष्ठ मूल्यों को हमारे समक्ष स्पष्ट करता है।

8.3.4 अपने मेरी रचना पढ़ी

हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'आपने मेरी रचना पढ़ी' एक साहित्यिक निबन्ध है। इस निबन्ध में व्यंग्य की प्रधानता है। इन्होंने सुन्दर हास्य का निर्माण करते हुए साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित ख्यात-अख्यात लेखकों के खोखलेपन का उद्घाटन किया है।

सामान्यतः द्विवेदी जी का साहित्य सृजन गुरु गम्भीर्य शैली में होता है, परन्तु प्रस्तुत निबन्ध में उन्होंने संयमपूर्ण शैली में सुन्दर विनोद का निर्माण किया है, और स्वयं को श्रेष्ठ साहित्यकार कहने वालों की गर्वोक्तियों की आलोचना की है।

आचार्य द्विवेदी जी का विचार है कि हिन्दी के साहित्यकार स्वयं को अत्यंत गम्भीर और तत्वेवाद के मर्मज्ञ समझते हैं, अपनी खोखली बुद्धि और निर्मूल विद्वता के बल पर वे बड़े-बड़े विषयों पर वाद-विवाद में उलझते हैं, अपनी रचनाओं को ज्ञान सागर तथा गरिमा मण्डित कहते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन ख्यात-अख्यात साहित्यकारों की खबर इस प्रकार ली है जो इन पंक्तियों में स्पष्ट दिखती है। 'जब आए दिन ऐसे ख्यात-अख्यात साहित्यकार मिल जाते हैं, जो छूटते ही पूछ लेते हैं, आपने मेरी अमुक रचना तो पढ़ी होगी? तो उनकी नीरस प्रवृत्ति या विनोद प्रियता का अभाव बुरी तरह प्रकट हो जाता है। गम्भीरता का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए द्विवेदी जी ने एक स्वानुभूत उदाहरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने सबसे अधिक गम्भीर और चिन्ता ग्रस्त कलकत्ते के एक वनमानुष को पाया था, उसे देखकर ऐसा लगता था कि सारे विश्व की चिन्ता उसके मुख पर केन्द्रित हो गई है। वह सदा दर्शकों के करुण भविष्य को अपनी पारदर्शी दृष्टि से अवलोकित करता प्रतीत होता था। सर्वज्ञात है कि वनमानुष मानव बोली बोलने में सक्षम है किन्तु वह यह बोली इसलिए नहीं बोलता कि कहीं स्वार्थी मानव उसे पराधीनता की जंजीरों में जकड़कर गुलाम न बना ले। इस प्रकार सभी वनमानुष गम्भीर एवं तत्त्वदर्शी दिखाई देते हैं। इस

उदाहरण के द्वारा द्विवेदी ने डार्विन के विकासवाद को पुष्ट किया है, डार्विन आदि मानव को वनमानुष का विकसित रूप मानते थे। इस प्रकार द्विवेदी जी यह कहना चाहते हैं कि मानव की गम्भीरता एवं तत्त्वदर्शन वंश परंपरागत है, इसमें कही भी सन्देह की बात नहीं है।

द्विवेदी जी का मानना है कि समाज में हास्य प्रियता एवम् विनोद भावना ने तो बाद में ही जन्म लिया होगा। वस्तुतः ये दोनों मनोवृत्तियाँ सम्पत्ति संचय का परिणाम है। अन्ततः हंसना-हंसाना, मनोविनोद आदि पूंजीवाद की देन है। इसी कारण ही हिन्दी साहित्य गम्भीरता का त्याग करना नहीं चाहता क्योंकि यह उसकी परम्परागत धरोहर है। इस गम्भीरता से हिन्दी साहित्यकार सम्भवतः यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि वे मन से पूंजीवाद विचारधारा से दूर हैं और साम्यवाद को प्रश्रय देते हैं।

द्विवेदी जी ने साहित्यकारों की रोनी सूरत पर भी व्यंग्य किया है। वे रोते नहीं बल्कि रोनी सूरत ही बनाये रहते हैं। वे आगे स्पष्ट करते हैं कि संसार में सुख की अपेक्षा दुःख अधिक है और हास्य की अपेक्षा रोदन। यदि हास्य और रोदन को बराबर बाँट दिया जाए तो रोदन अधिक मिलेगा। उन्होंने रहस्यवादी आलोचना पर ही व्यंग्य किया है। वे कहते हैं कि प्रतिदिन साहित्यकारों के विषय में विचार होता है। वाद-विवाद होता है। साहित्य से संबंधित पांच प्रकार के जीव हैं – लेखक, पाठक, संपादक, प्रकाशक और आलोचक, इन सभी व्यक्तियों के क्षेत्र अलग-अलग हैं। पढ़नेवाला आलोचना नहीं करता, आलोचना करने वाला लिखता नहीं। द्विवेदी जी के अनुसार जब कोई लेखक यह प्रश्न करता है कि "क्या अपने मेरी रचना पढ़ी है ? तो मन में अनेक विकार उत्पन्न होते हैं और ऐसा लगता है कि प्रश्नकर्ता के मस्तिष्क में कुछ दोष है और उसे चिकित्सक के पास ले जाने की आवश्यकता है।

इस ललित निबंध में द्विवेदी जी का मनोरंजन प्रिय विनोदी रूप मुखरित हुआ है। जिसमें गम्भीर तत्व के स्वयं सिद्ध शास्त्रियों को संक्रामक महामारी की खिल्ली सी उड़ायी गई है, इस निबंध में द्विवेदी जी ने साहित्यकारों पर व्यंग्य बाण बरसाये हैं। वे कहते हैं कि विनोद मानव में सरसता का संचार करता है। दार्शनिक मत के अनुसार विनोद का प्रभाव रासायनिक होता है। दुर्दान्त डाकू में विनोदप्रियता का मिश्रण कर देने से वह प्रजातंत्र का लीडर बन सकता है और समाज सुधार के कार्य में अपना योगदान दे सकता है। परन्तु ऐसा न होने के कारण वह डाकू ही बना रहेगा। अन्त में वे कहते हैं कि दार्शनिक का कथन है कि यदि गम्भीर व्यक्ति पर विनोदप्रियता की छाया पड़ जाए तो साहित्य-संसार में एक नवीन क्रान्ति का आगमन सम्भव हो सकता है परन्तु अभिमत यह सम्भव नहीं इसलिए पाठकों एवं लेखकों को सहन करना ही पड़ेगा।

इस निबंध में लेखक साहित्यकारों की विशेषता पर विचार करते हुए कहते हैं कि साहित्यकार अपनी रचना को लेकर गम्भीर बना रहता है और जो कुछ भी वह लिखता है, उसके विषय में निश्चित धारणा बना लेता है कि उसका लिखा लेख एक क्रांतिकारी लेख है। जब भी वह किसी से मिलते हैं तो

उनके पास एक ही प्रश्न होता है, आपने मेरी अमुक रचना तो पढ़ी होगी ?” उनके इस कथन से उनकी नीरसता प्रवृत्ति या विनोद प्रियता का अभाव बुरी तरह प्रकट हो जाता है । लेखक के अनुसार एक ‘फिलासफर’ का कहना है कि विनोद का प्रभाव कुछ रासायनिक-सा होता है । अगर दुर्दान्त डाकू के दिन में ही विनोद-प्रियता भर दी जाए तो वह लोकतंत्र का लीडर बन सकता है । किसी उदीयमान छायावादी कवि की नाड़ी में थोड़ा विनोद भर दे तो वह किसी फिल्म कम्पनी का नामी अभिनेता बन जाएगा ।

लोकतंत्र के नेताओं और डिक्टेटर्स में अंतर स्पष्ट करते हुए लेखक गांधी और जिन्ना का उदाहरण देते हैं । गांधी की बात भी कांग्रेस के लिए कानून है और जिन्ना की बात भी मुस्लिम लीग के लिए वेद-वाक्य है। फिर भी एक डेमोक्रेट है और दूसरा डिक्टेटर। एक डेमोक्रेट हंसना और मुस्कुराना जानता है परन्तु डिक्टेटर हंसने की बात सोच भी नहीं सकता है। अगर इन शक्तिशाली डिक्टेटर्स में हंसने की थोड़ी-सी भी निपुणता होती तो आज दुनिया की स्थिति में कुछ बदलाव होता ।

लेखक को कलकत्ते के चिड़ियाघर में रखे हुए वनमानुष का चेहरा संसार के जीवों में सबसे अधिक गम्भीर और चिन्तामग्न लगता है। उस वनमानुष को देखते ही जान पड़ता है कि संसार की समस्त वंदना को वह हस्तामलक की भांति देख रहा है। लेखक कहते हैं कि अफ्रीका के हब्लियों में यह विश्वास है कि वनमानुष की बोली बोल भी सकते हैं और संसार के रहस्य को भली-भांति समझ भी सकते हैं।

लेखक का कहना है कि आदिम युग का मनुष्य जब वह वानरी योनि से मानवी योनि में नया-नया आया होगा तब वह भी कलकत्ता के चिड़िया घर में रहनेवाले वनमानुष की तरह गम्भीर ही रहता होगा । जेब्रा और गैंडा भी गम्भीर लगते हैं परन्तु इनकी तुलना में गधे और वनमानुष की गंभीरता में मौलिक भेद है। गधा उदास होता है इसलिए नकारात्मक है परन्तु वनमानुष सोचता-सा रहता है इसीलिए उसकी गम्भीरता में कुछ तत्व है, कुछ सार है।

लेखक हंसना-हंसाना पूंजीवादी मनोवृत्ति की उपज मानते हैं क्योंकि जब मनुष्य ने कुछ पूंजी इकट्ठी कर ली होगी और संचय के साधन जुटा लिये होंगे तो वह स्वयं को खुशहाल अनुभव करता होगा। इस युग के हिंदी साहित्यिक लोग जो हंसना नापसंद करते हैं, शायद में पूंजीवादी बुर्जुआ मनोवृत्ति को मन-ही-मन घृणा करते हैं । लेखक के अनुसार रोना ही वास्तविक धर्म है क्योंकि संसार के सभी लोग हंस नहीं सकते इसलिए हंसी एक गुनाह है जबकि संसार के सभी लोग थोड़ा-बहुत रो सकते हैं। दुनिया में दुःख सुख की अपेक्षा अधिक है । अगर सारी दुनिया के रोदन और हंसी को बराबर-बराबर बाँट दिया जाए तो स्पष्ट है रोदन हास्य से ज्यादा मिलेगा ।

8.4 सारांश

निष्कर्ष रूप में आचार्य द्विवेदी जी के साहित्यिक निबंधों में चिंतनशील प्रवृत्ति और मस्ती

दोनों के दर्शन होते हैं । साहित्यिक निबंधों के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है 'द्रष्टा के भेद से दृश्य का अभिनव रूप हमें दूसरे के हृदय में प्रवेश करने की क्षमता देता है और हम केवल अपने व्यक्तिगत रुचि-अरुचि के संकीर्ण दायरे से निकलकर दूसरों की अनुभूतियों के प्रति संवेदनशील होते हैं वस्तुतः जो निबंध इस उद्देश्य की ओर उन्मुख करे वही साहित्यिक निबंध कहे जाने का अधिकारी है जो लेख हमारे हृदय की अनुभूतियों को व्यापक और संवेदनाओं को तीक्ष्ण नहीं बनाता, वह अपने उद्देश्य से च्युत होता है।' इससे यह स्पष्ट होता है कि उनका साहित्यिक चिंतन इस कसौटी पर खरा उतरा है। जो उनके साहित्यिक निबंधों में प्रकट हुआ है।

8.5 कठिन शब्द

जिजीविषा, प्रवृत्ति, विस्मृत, कापालिक, पदाघात, विष्णुकान्ता, उधर्वमुखी, पल्लवन, विलुप्त, उद्बुद्ध, दर्शन, उन्नयन

8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रश्नों पर सविस्तार विचार करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. 'अशोक के फूल' निबन्ध पर अपने विचार रखें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र3. 'बसंत आ गया है' निबन्ध पर प्रकाश डालें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० चौथी राम यादव का साहित्य
2. हिन्दी का ललित निबन्ध और आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी – डॉ० विदुषी अग्रवाल
3. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में सामाजिक चिंतन – डॉ० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
4. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और उनका साहित्य – डॉ० राजेन्द्र दीक्षित
5. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त वइसैया
6. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्रगुप्त
7. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ० ज्ञानेन्द्र वर्मा
8. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ० हरदयाल

.....

निबंध साहित्य के विकास में कुबेरनाथ राय का स्थान

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 निबन्ध साहित्य के विकास में कुबेरनाथ राय का स्थान

9.4 सारांश

9.5 कठिन शब्द

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

9.1 उद्देश्य

- हिन्दी की निबन्ध परम्परा को जान सकेंगे ।
- निबन्ध के विकास में कुबेरनाथ राय की भूमिका को जान सकेंगे ।
- निबन्ध में छिपे लोक कल्याण के अर्थ को जान सकेंगे ।

9.2 प्रस्तावना

‘निबन्ध’ गद्य साहित्य की एक विशेष विधा है जिसमें लेखक किसी विषय या वस्तु के सम्बन्ध में निजी विचारों का प्रतिपादन साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करता है । निबन्ध का सम्बन्ध

। न केवल साहित्य से अपितु, विज्ञान, दर्शन, इतिहास आदि से भी है। हिन्दी में साहित्यिक निबन्धों का अभ्युदय आधुनिक काल से ही हुआ है। पूर्ववर्ती साहित्यकारों का लक्ष्य सामान्यता अपनी भावनुभूतियों के ही प्रकाशन का था। विचारों का सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों का प्रवर्तन तथा पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। जिन्होंने हिन्दी निबंध के उद्भव और विकास के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि का निर्माण किया।

9.3 निबन्ध साहित्य के विकास में कुबेरनाथ राय का स्थान

गद्य के प्रादुर्भाव के साथ-साथ ही निबंध का भी जन्म हो गया था। भारतेन्दु जी के समय से निबंध-लेखन-परंपरा अत्यंत परिपक्व रूप में सामने आने लगती है। भारतेन्दु काल में विभिन्न पत्र-पत्रिकाएं निकल रही थीं, उन्हीं के माध्यम से भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट तथा पं० प्रताप नारायण मिश्र प्रभृति अनेक लेखक अत्यंत श्रेष्ठ कोटि की निबंध-रचना कर रहे थे। भारतेन्दु 'हरिश्चंद्र मैगजीन', बालकृष्ण भट्ट 'हिन्दी प्रदीप' तथा पं० प्रताप नारायण मिश्र 'ब्राह्मण' पत्रिकाओं का संपादन कर रहे थे और इनमें इनके बड़े महत्वपूर्ण निबंध प्रकाशित हो रहे थे। इनके अतिरिक्त भारतेन्दु-युग में बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री जैसे निबंधकार भी निबंध-रचना में संलग्न थे। वस्तुतः इस युग के निबंधों में विषयों का बड़ा वैविध्य है जो इस काल के निबंध-साहित्य को समृद्धि प्रदान करता है। भारतेन्दु जी ने इतिहास, पुरातत्व, धर्म, कला, समाज-सुधार, जीवनी, यात्रा-वृत्तांत, भाषा-साहित्य जैसे विषयों पर अनेक निबंध लिखे। प्रताप नारायण मिश्र ने इनसे भी आगे बढ़कर सामान्य से सामान्य विषयों को रोचकता से निबंधों में प्रस्तुत किया। धोखा, खुशामद, आप, बात, दाँत, माँ, मेरी, मूच्छ, परीक्षा, समझदार की मौत जैसे निबंध यह प्रमाणित करते हैं कि मिश्र जी के लिए विषयों की कोई सीमा नहीं थी। जीवन-जगत का कोई भी विषय उनके निबंध का कथ्य बन सकता था। इस युग के निबंधकारों में जो प्रखर सामाजिक चेतना और शैली की जिंदादिली दिखाई देती है, वह आगे के निबंध में नायाब होती चली गयी है।

द्विवेदी युग तक आते-आते निबंध पूरी तरह प्रतिष्ठित हो विकास के पथ पर तीव्र गति से बढ़ता है। इस युग में निबंध का विषय-विस्तार भी हुआ और भाषा के विकास के साथ-साथ शैली में भी प्रौढ़ता आयी। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्ता, माधव प्रसाद मिश्र, गोविंद नारायण मिश्र, मिश्र बंधु- विशेषतः श्याम बिहारी मिश्र व शुकदेव बिहारी मिश्र, सरदार पूर्ण सिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, श्यामसुंदर दास, पद्म सिंह शर्मा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि ने इस युग में निबंध साहित्य को समृद्ध किया। इस युग में विषयों की दृष्टि से भारतेन्दु युग के समान जिंदादिली तो नहीं मिलती किंतु एक आलोचनात्मक गंभीरता निबंधों में आ जाती है। साहित्य और भाषा की विभिन्न समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने वाले निबंध इस युग में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आदि द्वारा लिये गये। व्यंग्य की

दृष्टि से बालमुकुंद गुप्त के 'शिव शम्भू का चिट्ठा निबंध विशेष महत्व के हैं, आज भी उनकी प्रासंगिकता है। पं. माधव प्रसाद मिश्र के पर्वों, त्योहारों तथा भ्रमण सम्बन्धी निबंध विशेष रोचक बन पड़े हैं। इस युग में सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों का विशेष महत्व है। इन्होंने अपने छः निबंधों से ही हिंदी निबंध के इतिहास में अपनी विशिष्ट पहचान और स्थान बना लिया था। पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी प्रकाण्ड विद्वान थे, पुरातत्व, इतिहास, आदि से सम्बंधित उनके निबंध विद्वता का परिचय देते हैं। 'कछुआ धर्म', 'मारेसि मोहिं कुठाव' जैसे निबंधों ने गुलेरी जी को बहुत ख्याति प्रदान की। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने साहित्यिक विषयों के निबंधों के लिए तो जाने जाते ही हैं किंतु उन्होंने मनोविज्ञान का जितना सूक्ष्म अध्ययन अपने कुछ निबंधों में किया है, वह साहित्य की अमूल्य धरोहर है। श्रद्धा, भक्ति, लोग और प्रीति ईर्ष्या जैसे मनोभावों का सूक्ष्म विश्लेषण उन्हें अपने ही प्रकार के मनोवैज्ञानिक निबंधकार का अद्वितीय गौरव दिलाता है। समग्रतः इस युग के निबंध में एक प्रकार की गंभीरता और शोधपरक प्रवृत्ति तो है "किंतु वह ताजगी, वह उल्लास, वह निर्द्वन्द्व भाव, व्यक्तित्व का उल्लासित उच्छवास तथा खड़ी बोली के भीतर से झाँकती हुई अवधी या ब्रज की चुलबुलाहट और मधुरता इस युग के निबंधों में उपलब्ध नहीं होती जो भारतेन्दुयुगीन साहित्य की सहज निधि थी।"

छायावाद युग के समय निबंध साहित्य और भी प्रौढ़ता तथा समृद्धि प्राप्त करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, बेचन शर्मा उम्र, रघुवीर सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, आदि कितने ही प्रसिद्ध निबंधकारों ने अपने कृतित्व से हिंदी निबंध को विकसित किया। नयी-नयी शैलियों और ज्ञान तथा पंडित्य की ऊर्जा से हिंदी निबंध ने बहुत प्रगति की। आचार्य शुक्ल के निबंध उनके "विशद पांडित्य, प्रौढ़ चिंतन, सूक्ष्म विश्लेषण, व्यापक अनुभव" के लिए ध्यान आकृष्ट करते हैं। इस काल में भी उनके मनोवैज्ञानिक निबंध प्रकाशित हुए और उन्हें अच्छी पहचान मिली। इस युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि 'ठलुआ क्लब', फिर निराशा क्यों, मेरी असफलताएँ' में संकलित कई निबंधों में ललित निबंध का प्रारम्भिक रूप देखा जा सकता है। मेरा मकान, मेरे नापिताचार्य, मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ, प्रीति भोज आदि निबंधों में ललित निबंधों के गुण देखे जा सकते हैं। पद्म लाल पुन्नालाल बख्शी जी ने भी निबंध साहित्य की समृद्धि में अच्छा योग दिया उनके निबंध पंचपात्र शीर्षक से प्रकाशित हुए। 'अतीत स्मृति', 'उत्सव', 'रामलाल पंडित', 'श्रद्धाजलि के दो फूल' - इनके चर्चित निबंध हैं। बेचन शर्मा 'उम्र', रघुवीर सिंह, माखन लाल चतुर्वेदी आदि ने भावात्मक निबंधों की रचना की। इनके अतिरिक्त भी अन्य कुछ निबंधकार, यथा रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर। पं. भगवतशरण उपाध्याय, आदि अपने निबंधों से निबंध-साहित्य का विकास कर रहे थे किन्तु इनका अधिकांश कृतित्व बाद के समय में ही प्रकाश में आया। अतः इनकी चर्चा आगे की जायेगी।

छायावादोत्तर काल में हिंदी निबंध का विकास ग्राफ बहुत तेजी से ऊपर गया है और इसमें शैली तथा विषय दोनों दृष्टियों से हिन्दी निबन्ध ने नित्य नये क्षितिज छुए हैं। इस युग के प्रारम्भ

में एक ओर तो ऐसे साहित्यिक निबंध लिखे जा रहे थे जो निबंध की सीमा से परे जाते हुए 'समीक्षा'—'आलोचना' की श्रेणी में जा रहे थे । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, तथा नंद दुलारे वाजपेयी के निबंध इसी कोटि के थे। इनसे अलग हट कर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध एक अलग ही ढंग ले कर हिंदी साहित्य की श्री वृद्धि करते हैं। ये निबंध अपने लोक, प्रकृति और संस्कृति से अत्यन्त गहरे रूप में जुड़े हुए हैं । इन निबंधों में भी द्विवेदी जी के पाण्डित्य और गंभीर ज्ञान के दर्शन होते हैं किंतु वे इतनी सहजता से निबंध में अनुस्यूत हैं कि पाठक पर भारी नहीं पड़ते । 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'विचार और प्रवाह', 'कुटज' आदि उनके निबंध संग्रह हमारे साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं ।

जैनेन्द्र कुमार ने भी चिंतनपरक और दार्शनिक निबंधों के द्वारा अपनी अलग पहचान बनायी। धर्म, राजनीति, साहित्य—संस्कृति, प्रेम—काम, विवाह आदि विषयों पर उन्होंने अपनी बेवाक सोच अकुण्ठ भाव से व्यक्त की है । 'जड़ की बात', 'साहित्य का प्रेय और प्रेम', 'सोच—विचार', 'मन्थन', 'ये और वे' इतस्ततः आदि संकलनों के रूप में उनके निबंध प्रकाशित हुए । शांतिप्रिय द्विवेदी और रामधारी सिंह 'दिनकर' के निबंध ही अपनी भाषा—शैली के कारण देर तक अपना प्रभाव बनाए रखते हैं । शांतिप्रिय द्विवेदी के संचारिणी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'धरातल', 'प्रतिष्ठान', 'साकल्य', 'आधान', 'वृत्त और विकास' आदि उनके चिर्चत निबंध—संकलन हैं । 'दिनकर' जी के 'अर्धनारीश्वर', 'मिट्टी की ओर', 'रेती के फूल' आदि निबंध संग्रह उनके समृद्ध गद्य का परिचय देते हैं । इनके अतिरिक्त रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी के 'माटी की मूरतें', जंजीर और दीवारें, 'गेहूँ और गुलाब', वन्दे वाणी विनायकौ, देवेन्द्र सत्यार्थी के 'धरती गाती है', 'एक युग : एक प्रतीक', 'रेखाएँ बोल उठी' आदि डॉ. जयनाथ नलिन के 'प्रस्ताव प्रभा', चिंतन और कला', 'मझदार के पार' आदि पं. भगवतशरण उपाध्याय के 'इतिहास के पृष्ठों पर', 'खून के धब्बे', 'सांस्कृतिक निबंध' आदि इस काल—खंड के प्रसिद्ध निबंध—संग्रह हैं ।

ललित निबंध निबंध की परंपरा का जो वास्तविक श्री गणेश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा हुआ था, उसमें विद्यानिवास मिश्र, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर माचवे, विवेकी राय, हरिश्चन्द्र वर्मा एवं कुबेरनाथ राय के कृतित्व का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है । विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में अपने लोक—समाज से गहरा जुड़ाव सांस्कृतिक चेतना और लालित्यमयी शैली देखते ही बनती है। 'छितवन की छाँव', 'तुम चंदन हम पानी', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'आँगन का पंछी' और 'बनजारा मन', 'भोर का आह्वान', 'मैंने सिल पहुँचाई' आदि इनके निबंधों के प्रसिद्ध संग्रह हैं। प्रभाकर माचवे के निबंध अपने हास्य—व्यंग्य और चुटीलेपन के लिए जाने जाते हैं । 'खरगोश के सींग', 'बेरंग', 'तेल की पकौड़ियाँ' आदि इनके निबंध संग्रह चर्चा में रहे हैं। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के ललित घुंघरू', 'महके आँगन चहके द्वार' 'माटी हो गई सोना', 'दीप जले शंख बजे',

आदि संग्रहों के द्वारा उन्होंने हिंदी निबंध को समृद्ध किया । विवेक राय का 'फिर बैतलवा डाल पर', लक्ष्मीकांत का 'मैंने कहा', केदारनाथ अग्रवाल का 'समय-समय पर', लक्ष्मीचंद्र जैन का 'कागज की किशियाँ, डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा का 'चमचा पुराण' आदि निबंध – संग्रहों ने हिंदी ललित निबंध-परंपरा के संवर्द्धन में योग दिया है ।

कुबेरनाथ राय इन सबसे अलग अपनी ही शैली के अनूठे ललित निबंधकार हैं । यद्यपि उनके निबंधों की प्रकृति अपने सांस्कृतिक परिवेश के कारण डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंधों के निकट है किंतु वे उनसे भी आगे बढ़ कर संस्कृति के सनातन प्रश्नों को वर्तमान की चिंता से जोड़ते हैं । उनके निबंध छोटे-से प्रसंग, गाँव या किसी भी स्थान, विशेषतः अपनी जन्मभूमि से किसी भी रूप में उठाते हैं और फिर उनकी उन्मुक्त कल्पना अपने विशाल ज्ञान-भंडार से किसी भी क्षेत्र में विचरण कर सकती है – ज्योतिष, धर्म-शास्त्र, वेद-पुराण, शाक्त-मत, वैष्णव मत, भारतीय काव्य और पाश्चात्य काव्य, भारतीय और पाश्चात्य काव्य शास्त्र आदि-आदि की वीथियों में विचरण करते हुए वे वर्तमान समय के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संकटों से जूझ सकते हैं । वे अंग्रेजी के निष्णात अध्यापक (आसाम के नलबारी नामक कस्बे में एक स्नातकोत्तर महाविद्यालय में प्राध्यापक) तथा संस्कृत और हिंदी साहित्य के पारंगत विद्वान थे । अपने विभिन्न ज्ञान-अनुशासनों का प्रयोग कर ललित निबंध के रूप में अपनी अत्यन्त रम्य रचना प्रस्तुत करते हैं । ग्रीक और भारतीय मिथक-संसार की समानताओं का वे अद्भुत साम्य रेखांकित कर दोनों संस्कृतियों के बीच सेतु-बंधन का एक महत् कार्य इन निबंधों में संपन्न करते हैं । वे सच्चे अर्थों में 'रस आखेटक' हैं । उन्होंने अपने निबंधों से निबंध-साहित्य को एक अपूर्व गौरव प्रदान किया है । हमारा विचार है कि हिंदी में वे अपने प्रकार के एक ही निबंधकार हैं । ललित निबंध का पारम्परिक रूप उनके निबंधों की गम्भीर-गहन चर्चा को अपनी परिभाषा में समेटने में पूरी तरह समर्थ नहीं है । उनके निबंधों के विभिन्न संग्रह प्रकाश में आये हैं, वे मृत्यु-पर्यन्त श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर निबंध प्रस्तुत करते रहे । 61 वर्ष की आयु में 5 जून, 1996 ई. को उनका स्वर्गवास हो गया । 'मराल', 'प्रिया नीलकंठी', 'रस आखेटक', 'गंधमादन', 'निषाद बांसुरी', 'विषाद योग', 'पर्णमुकुट', 'महाकवि की तर्जनी', मणिपुतुल के नाम, किरण नदी पर चंद्र मधु, 'मन पवन की नौका', 'दृष्टि अभिसार', 'त्रेता का वृहत्नाम' तथा 'कामधेनु' आपके प्रसिद्ध निबंध संकलन हैं । हिंदी जगत ने उनके निबंधों का भरपूर स्वागत तथा सम्मान किया । इस क्षेत्र के उच्चतम पुरस्कार उन्हें प्रदान किए गए । 'प्रिया नील कंठी' पर उत्तर प्रदेश शासन के हिंदी संस्थान द्वारा 'स्तरित पुरस्कार' प्रदान किया गया । इसी प्रकार 'महाकवि की तर्जनी' पर 'मानस संगम', कानपुर द्वारा प्रदत्त ताम्रपत्र प्रशस्ति एवं साहित्य पुरस्कार तथा साहित्य अनुसंधान परिषद् द्वारा राम साहित्य पुरस्कार प्रदान किया गया । 'महाकवि की तर्जनी' पर भी उ. प्र. शासन का आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार प्रदान

किया गया वृहत्नाम को भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता द्वारा सम्मानित किया गया । ये सब पुरस्कार एवं निबंध संग्रहों के कई-कई संस्करण इनकी व्यापक स्वीकृति एवं लोकप्रियता को प्रमाणित करते हैं ।

वस्तुतः उनके निबंध अहं से इदम् तक की यात्रा करते हुए अपने पाठक के लिए ज्ञान के विभिन्न किवाड़ खोलते हैं । अपने विभिन्न निबंध-संग्रहों की भूमिकाओं में, जो प्रायः इन संग्रहों के अंत में ही दी गयी हैं, उन्होंने अपने निबंधकार की प्रतिबद्धता से परिचित कराया है । 'प्रिया नीलकंठी' की अंत में शीर्षक भूमिका में वे अपना प्रस्थान बिंदु इस प्रकार बताते हैं, "मेरी प्रतिज्ञा भी विषयामी नीलकंठी है। दुःख या उल्लास दोनों के भीतर ज़हर होता है उस ज़हर को यह खींच कर स्वयं श्यामकंठ हो जाती है और धरती को जो कुछ देती है, वह शुद्ध-प्राण और रस रहता है।" स्वयं विषयान कर अपने पाठकों को अमृत प्रदान करने की यह निष्ठा किसी भी साहित्यकार की बहुत बड़ी प्रतिबद्धता है ।

कुछ लोगों ने उनकी भाषा को लेकर आपत्ति की है कि वह सुग्राह्य नहीं है । वस्तुतः भाषा एक संस्कार है, भाषा में सरल और दरुह कुछ नहीं होता, वह हमें संसर्ग और संपर्क से ही प्राप्त होती है । हमें अपना भाषा-संस्कार विकसित करना होगा । कुबेरनाथ राय की मान्यता है कि यह निबंध जैसी विधा के माध्यम से ही संभव होगा । उन्होंने कहा है कि उनके पूरे लेखन में संस्कृत और लोक-भाषाओं के दो-तीन दर्जन से अधिक शब्द ऐसे नहीं होंगे जो अपरिचय में हैं । ऐसा जहाँ-जहाँ मैंने किया है, सचेत और सकारण ढंग से किया है । उदाहरण के लिए 'प्रजागर पर्व' में साहित्यकार' में प्रजागर शब्द को ही लें। यह 'महाभारत' का शब्द है। युद्ध पूर्व रात्रि या व्रत की रात्रि या ऐसी मनः स्थिति के लिए 'प्रजागर' शब्द आया है। मुझे वर्तमान संदर्भ में अर्थगत संवेदनाओं की दृष्टि से यह शब्द मूल्यवान लगा और मैंने 'जागरण पर्व' न लिखकर 'प्रजागढ़ पर्व' न लिखकर 'प्रजागर पर्व' लिखा । दिक्कत हमारे लेखन में नहीं है, दिक्कत है नवशिक्षित की भाषागत दरिद्रता के भीतर । मेरा उद्देश्य रहा है पाठक के चित्त को एक परिमार्जित भव्यता देना और साथ ही उसकी चित्त-ऋद्धि का विस्तार करना । 'वस्तुतः ऐसे स्थलों पर पूरे मनोयोग से पढ़ने पर इन शब्दों का अर्थ स्वतः स्पष्ट हो जाता है, इसके लिए शब्दकोशों का सहारा नहीं लेना पड़ता है। सभी दृष्टियाँ से कुबेरनाथ राय के निबंधों का हिन्दी निबंध साहित्य की श्री वृद्धि में अभूतपूर्व योगदान है ।

9.4 सारांश

हिन्दी के ललित निबन्धकारों में कुबेरनाथ राय का अद्वितीय स्थान है । इनके निबन्ध व्यक्ति प्रधान निबन्ध है जिनमें मौलिक चिन्तन, पांडित्य की छाप के साथ-साथ व्यंग्य विनोद का पुट भी

विद्यमान है । इनके द्वारा लिखे गए निबंध रोचक, ज्ञानवर्द्धक। आकर्षक एवं मनोरंजन है। कुबेरनाथ राय हिन्दी के ऐसे निबंधकार हैं जिनका हिन्दी निबंध साहित्य में विशिष्ट योगदान है । एक ललित निबंधकार के रूप में इन्होंने हिन्दी निबंध साहित्य की पर्याप्त श्री वृद्धि की है ।

9.5 कठिन शब्द

- | | |
|--------------|-----------------|
| 1. संलग्न | 2. परिमार्जित |
| 3. क्षितिज | 4. प्रादुर्भाव |
| 5. सनातन | 6. निर्द्वन्द्व |
| 7. लालित्यमय | 8. पुरातत्त्व |
| 9. वीथियों | |

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

- निबन्ध परम्परा में कुबेरनाथ राय के स्थान पर प्रकाश डालें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- कुबेरनाथ राय पर विचार करते हुए निबन्ध के विकास पर प्रकाश डालें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. ललित निबन्धकार कुबेरनाथ राय – डॉ० सुरेश महेश्वरी
2. कुबेरनाथ राय के निबन्धों में ललित तत्व – डॉ० अशोक
3. कुबेरनाथ राय और उनका साहित्य – अमिता सिंह
4. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त बड़सैया
5. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्र गुप्त
6. हिन्दी निबन्ध का विकास – डॉ. ओंकार नाथ शर्मा
7. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ. हरदयाल
8. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ. ज्ञानेन्द्र वर्मा
9. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना

.....

कुबेरनाथ राय के निबन्धों की विशेषताएं

- 10.0 रूपरेखा
- 10.1 उद्देश्य
- 10.2 प्रस्तावना
- 10.3 कुबेरनाथ राय के निबन्धों की विशेषताएं
 - 10.3.1 भारतीय संस्कृति के आख्याता
 - 10.3.2 अहं से इदं – 'स्व' से 'जगत' की यात्रा
 - 10.3.3 परम्परा से आधुनिकता में संचरण
 - 10.3.4 जन्मभूमि प्रेम और प्रकृत-चित्रण
 - 10.3.5 बहुपक्षीय ज्ञान
 - 10.3.6 भारतीय साहित्य से पाश्चात्य साहित्य तक फैला दिगांत
 - 10.3.7 मानवतावादी सन्देश
 - 10.3.8 निबन्ध के ललित्य में साहित्य की गम्भीर चर्चा
 - 10.3.9 वर्तमान के ज्वलन्त राजनीतिक प्रश्नों की चर्चा
- 10.4 सारांश
- 10.5 कठिन शब्द
- 10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

10.1 उद्देश्य

- निबन्ध की सामान्य विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे ।
- निबन्ध का सामान्य अर्थ भी समझ सकेंगे ।
- कुबेरनाथ राय के निबंधों की विशेषताओं को जान सकेंगे ।

10.2 प्रस्तावना

कुबेरनाथ राय के निबन्धों में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवेश को उभारने का प्रयास किया है। वे अपने निबन्धों में समसामयिक समस्याओं को उठाकर उनका समाधान खोजना चाहते हैं । इनके निबंधों में विपुल शास्त्र ज्ञान, अगाध पाण्डित्य एवं भाषा की अपूर्व शक्ति देखी जा सकती है । इनकी रचना शैली में गद्य-काव्य की सी रोचकता विद्यमान है । इनके काव्यात्मक बिम्बों, प्रतीकों, उपमानों ने अनुपम अर्थबोध प्रदान किया है, तो लाक्षणिक भाषा ने अर्थ गाम्भीर्य उत्पन्न करने में विशेष योगदान दिया है । इनके निबंधों में सांस्कृतिक बोध भी पर्याप्त मात्रा में उभरा है ।

10.3 कुबेरनाथ राय के निबंधों की विशेषताएँ

कुबेरनाथ राय हिंदी के अद्वितीय ललित निबंधकार हैं । भाषा-शैली और कथ्य दोनों दृष्टियों से वे अपना सानी नहीं रखते । कुबेरनाथ राय ने दो सौ से ऊपर ललित और साधे निबंधों को लिखा है। (निबंधकार का स्व कथन 'मराल' संग्रह में जो उनके 14-15 निबंध-संग्रहों में संकलित है।) 'मराल' की 'अपनी बात' शीर्षक भूमिका में उनका कथन है, 'यह मेरी ओर से पन्द्रहवां संकलन है क्योंकि चौदहवां 'उत्तरकुरु' एक अर्से तक प्रकाशक के पास प्रकाशनार्थ पड़ा हुआ था । उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं - प्रिया नीलकंठी', 'रस आखेटक', 'गधमादन', निषाद बाँसुरी, 'विषाद-योग', 'पूर्ण मुकुट', 'महाकवि की तर्जनी', 'मणिमुतुल के नाम', 'किरात नदी मं चंद्र मधु', 'मन पवन की नौका', 'दृष्टि अभिसार', 'त्रेता का बृहत्साम', 'कामधेनु' तथा 'मराल'। उनकी ललित शैली में गम्भीर से गम्भीर विषयों का मनमोहन विश्लेषण प्राप्त होता है जिससे पाठक सहज ही प्रभावित हो उनके प्रवाह में बह जाता है । इसीलिए इन निबंधों का व्यापक स्वागत हुआ, हिंदी जगत ने इन्हें खूब-खूब सराहा और भरपूर सम्मान दिया। उनके अधिकांश निबंधों के प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ के संचालक प्रसिद्ध विद्वान पाण्डुखां राव ने उनके सम्बंध में लिखा है, 'प्रसन्न पुण्य सलिला भगवती भगीरथी ने कुबेरनाथ राय को रस प्रदान किया तो असम की आत्मीयता ने उनका 'तत्तबोध' कराया । दोनों का मंजुल सांमजस्य श्री कुबेरनाथ राय की लेखनी में विद्यमान है।

वस्तुतः अपने ललित निबंधों में कुबेरनाथ राय देश और समाज, विशेषता, संस्कृति के

ज्वलंत प्रश्नों पर अपनी प्रखर सोच की अभिव्यक्ति करते हैं । इसीलिए वे अपने निबंधों को 'क्रद्ध ललित' भी कहते हैं। 'रस आखेटक' की ओर, अब अन्त में... 'शीर्षक भूमिका में वे अपने निबंधों की प्रस्थान-भूमि का वर्णन इस रूप में करते हैं, इन निबंधों में धरती में क्रोध, धरती की त्राहि और धरती की करुणा का समावेश हो गया है । फलतः ये निबंध 'क्रद्ध ललित' स्वभाव वाले बन गए हैं । इन्हें केवल 'ललित' कहना इनका अधूरा परिचय है। मेरे जैसे तमोगुणी वैष्णव के लिए शुद्ध बारहबानी ललित-ललाम बन उठना-बैठना-चलना कठिन है। सच तो यह है कि मेरा सम्पूर्ण साहित्य या तो क्रोध है, नहीं तो अंतर का हाहाकार।" इस आत्म-कथ्य से उनके निबंधों की तासीर समझ में आती है। इस रूप में उनकी निबंध केवल चिंतनपरक नहीं है, वे चिंतापूरक हैं, चिंता जगाते हैं, चिंता करते हैं, सदैव युग, समाज और संस्कृति के पैने प्रश्नों पर चिंतन-प्रवृत्त करते हैं पाठक के लिए भी ये निबंध एक चुनौती की तरह हैं, वे एक विशेष प्रकार का सांस्कृतिक संस्कार पाठक से माँगते हैं । इनका प्रत्येक पाठ हर बार निबंधों की नयी-नयी विशेषताएँ उद्घाटित कर पाठक के मानसिक क्षितिज का विस्तार करता है । इन निबंधों की विशेषताओं का एक स्थूल सा मूल्यांकन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं -

10.3.1 भारतीय संस्कृति के आख्याता

अपने निबंधों के माध्यम से कुबेरनाथ राय जी ने भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ को सामने लाने का महत् प्रयत्न किया है । अपनी चार पुस्तकों- 'निषाद बाँसुरी', 'मन पवन की नौका', 'किरात नदी में चन्द्रमधु', तथा 'उत्तर कुरु' का प्रतिपाद्य बताते हुए वे कहते हैं, इन चारों पुस्तकों का विषय है भारतीयता के ढाँचे (Structure) और 'आत्मिक मूलाधार' (Spiritual Base) की खोज।" वस्तुतः वे जीवन-पर्यन्त अपने निबंधों के माध्यम से भारतीय परम्परा-संस्कृति के श्रेष्ठ मूल्यों से नयी पीढ़ी को परिचित कराने में संलग्न रहे। वे सही अर्थों में 'पण्डित' थे । अंग्रेजी साहित्य तथा शेष पश्चिमी साहित्य, रूसी साहित्य आदि के विद्वान् तों थे ही भारतीय परम्परा से उनका विशाल ज्ञान-भण्डार भरा था । वैदिक परम्परा, शाक्त परम्परा, निगम-आगम, सभी को उन्होंने गंभीर दोहन किया था । अपने लोक और संसार का उन्हें पूरा ज्ञान और सूक्ष्म निरीक्षण था । ये सभी बातें उनके निबंधों में पग-पग पर दिखायी देती हैं। "भारतीय संस्कृति के आधार तीन हैं : वैदिक, तांत्रिक और लोकायत" - उन्होंने इन तीनों का गम्भीर अध्ययन किया है और उनके निबंधों में पग-पग इस विशाल ज्ञान-राशि के कण बिखरे पड़े हैं जो अपने पाठक को सहज ही, ललित रूप में, एक संपन्नता दे जाते हैं । वे भारतीय संस्कृति के सार-तत्व रूप में तीन शब्दों की अवस्थिति मानते हैं, "तीन ऐसे शब्द हैं जिन्हें समझने का सामर्थ्य हो तो भारतीयता क्या है, इसका उत्तर मिल जाता है। प्रथम शब्द है 'ऊँ' । ... दूसरा शब्द है 'शिव'... तीसरा शब्द है 'राम' । वे इस भारतीयता की गहन व्याख्या का प्रयत्न ही अपने निबंधों द्वारा करते हैं । भारतीयता उनके लिए दंभ की वस्तु नहीं अपितु अपने को समझने, सही रूप में जानने की स्थिति है। 'सही भारतीयता क्षुद्र, संकीर्ण

राष्ट्रीयता के दंभ के बिलकुल अलग तथ्य है। वह सर्वोत्तम मनुष्यत्व है। पूर्ण 'भारतीय' बनने का अर्थ है 'राम' जैसे बनना।" इस प्रकार अनेक रूपों में वे भारतीय परंपरा और संस्कृति के श्रेष्ठ तत्वों को सामने ला उन्हें हमारे वर्तमान से जोड़ते हैं। परंपरा और आधुनिकता के मिलन का एक अद्भुत संसार उनके निबंधों में प्रस्तुत हुआ है।

10.3.2 अहं से इदं - 'स्व' से 'जगत' की यात्रा

कुबेरनाथ राय की यह विशिष्ट शैली है कि वे किसी छोटे-से अपने प्रसंग को अपने गाँव या क्षेत्र से उठा कर निबंध का आरम्भ करते हैं, फिर चाहे वे कहीं भी अपने पाठक को ले जाएँ यह उनकी कल्पना की स्वतंत्रता है। 'स्व' से आरम्भ कर वे सम्पूर्ण जगत और जागतिक समस्याओं को अपने निबंध के पेटे में समा लेने की चेष्टा करते हैं। 'मैं' से प्रारम्भ कर यह यात्रा 'इदं' तक जाती है, इसे सहज ही 'अहं' से इदं तक की यात्रा कहा जा सकता है। 'रस आखेटक' के निबंधों से यह बात स्पष्ट की जा सकती है। 'रस आखेटक' निबंध का प्रारम्भ इस घटना से होता है कि लेखक के पिताश्री ने पूछा था कि तुम क्या बनना चाहते हो? संन्यासी और उसके बाद 'प्रोफेसर' बनने की कामना स्पष्ट कर वह आगे बढ़ता है फिर प्रोफेसरों की कूप मंडूकता, आतंकवादी शैव-सिद्धान्त में, विशेषतः मूर्ति और चित्र कला से इसके साक्ष्य उपस्थित करना, ग्रीष्म रात्रि के पिछले प्रहर की श्रृंगार रस, आयुर्वेद ग्रंथों आदि के माध्यम से मधुरता सिद्ध करना, महुआ बीनना, 'गाथा-सप्तशती' द्वारा इस सबकी पुष्टि, आदि-आदि से उनका कथ्य-वितान विस्तीर्ण होता है। इसी प्रकार 'तृषा, तृषा'। 'अमृत तृषा' निबंध का प्रारम्भ बचपन में रटाये गए पहाड़े की स्मृति और अपने गाँव में अफीम के खेत जोतने की प्रक्रिया से प्रारंभ होता है और फिर आगे बढ़कर 'अकविता', फ्रांस के 'सुर्रियालिज्म', बीटनिक पीढ़ी, पश्चिमी साहित्य में नारी जैसे गम्भीर प्रश्नों की ओर आते हैं। 'दर्पण विश्वासी' का प्रारम्भ सुबह हजामत बनाने की छोटी-सी घटना से होता है। 'हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध' तथा 'कवि, तेरा भोर आ गया' की भी यही शैली है।

10.3.3 परंपरा से आधुनिकता में संचरण

कुबेरनाथ राय के निबंधों की सरसता और आकर्षण का मुख्य बिन्दु यह है कि वे परंपरा को अतीत-मोह के रूप में ग्रहण नहीं करते हैं अपितु उसके साखान रूप को अपने वर्तमान से जोड़ते हैं। इसमें वे अपने पाठक को एक विशाल दृष्टि-बहुत बड़ा विज्ञान-देना चाहते हैं। "मेरा उद्देश्य रहा है हिंदी पाठक के हिंदुस्तानी मन को 'विश्व-चित' से जोड़ना और उनको मानसिक ऋद्धि प्रदान करना। मेरे निबंध 'भारतीय मन और विश्वमन' के बीच एक सामंजस्य उपस्थित करने की चेष्टा करते हैं।" परंपरा से इस प्रकार जुड़ कर भारतीय मानस न केवल अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है अपितु वह वर्तमान के कुहासे में अपने लिए सही दिशा भी पाता है। वह बात प्रारंभ करता है इस कथन से कि पिता ने जब पूछा कि क्या बनना चाहता है तो संन्यासी के बाद प्रोफेसर

के रूप में जीवन जीना चाहने की कामना में वह 'प्रोफेसर' के वर्तमान रूप पर विचार करने लगता है "जिनकी सारी बादशाहत विद्यार्थी-जीवन में लिखे गये नोटों पर आश्रित है", जो असली प्रोफेसर कर्म करेंगे उन्हें खून के आँसू पीने होंगे। प्रोफेसर किस प्रकार कुलपति की चिरौरी करते हैं, इन सब स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। अफीम की बात करता हुआ, वह उस बीटनीकपीट्टी और उसके साहित्य की बात करने लगता है जो अफीम का सेवन करती है। इसी क्रम में हिंदी की 'अकविता' आदि पर भी विचार किया गया है। वस्तुतः कुबेरनाथ राय के निबंध इस कथन की पुष्टि करते हैं कि जो व्यक्ति जितना अधिक अपनी परंपरा में डूबा होगा। वह उतना ही अधिक आधुनिक होगा।

10.3.4 जन्मभूमि प्रेम और प्रकृति-चित्रण

अपनी जन्मभूमि गाजीपुर जनपद के गाँव मत्सा और उसके प्राकृतिक परिवेश से निबंधकार को अपार प्रेम है, फलतः वह जहाँ कहीं भी अवसर मिलता है, वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का कवित्वपूर्ण में यदा-कदा पाते चलते हैं, 'यह पूर्वी उत्तर प्रदेश की धरती है। ...इस पूर्वी उत्तर प्रदेश की धरती का भी ग्रीष्म में अपना एक स्वाद है। अपना एक निजी रस है जिसे हम वैराग्य रस कह सकते हैं। ...अपनी भूमि, अपनी धरती तो अपनी माँ है।' 'तृषा, तृषा। अमृत तृषा' निबंध में हमारे यहाँ गाजीपुर जिले में सफेद फूलों वाले पोस्त ही होते हैं" का वर्णन आया है। गाजीपुर और अपने गांव की धरती की प्रकृति को उसने छायावादी कवि की आँख से निहारा है, "नौ बजे के बाद ही दिवस दैत्य की तरस मुँह कर आग उगलने लगता है। चारों ओर फसल कट जाने के कारण कहीं-कहीं बीच में बबूल के श्यामल पेड़ और दियासलाई के डिब्बे-जैसे छोटे-छोटे बिना खिड़की के डेरे। दोपहर को यह मैदान धू-धू करके जलने लगता है और यह क्षुद्र पेड़ तथा डिब्बेनुमा डेरे उसकी विस्तृत, सपाट निर्जनता को कम नहीं करते। ...बस्ती के चारों ओर अवश्य आम, जामून और महुआ के बाग लगे रहते हैं। पश्चिमी हवा आठ बजे दिन से आठ बजे रात तक सम्पूर्ण रोषग्नि के साथ हा-हाकार करके बहती है।" कहना न होगा कि ग्रीष्म की धू-धू करती हवाओं और पूरे परिदृश्य का इतना सूक्ष्म और रोचक चित्रण और कहीं भी प्राप्त हो सकता है। महुआ बीनने की बात आती है तो लेखक को अपने गाँव-प्रांत का दृश्य याद आ जाता है, "नयी उमर की लड़कियाँ अँधेरे मुँह महुआ बीनने आती हैं। कभी-कभी बड़ा हो रोमांटिक कारोबार हो जाता है।" और तभी व्यथा में डूबे "रस आखेटक को अपने गाँव के चमारों का ग्रीष्मकालीन भोजन याद आ जाता है और करुणा से भी कह उठता है," समस्त पूर्वी उत्तर में यह होता है।" इस प्रकार उनके निबंधों में जन्म-भूमि और उसकी प्रकृति से लेखक का लगाव सहज ही देखा जा सकता है।

10.3.5 बहुपक्षीय ज्ञान

कुबेरनाथ राय के निबंधों में ज्ञान के अन्य अनुशासनों का परिचय बहुत अच्छी तरह मिलता

है। कृषि सम्बन्धी ज्ञान से लेकर ज्योतिष, दर्शन, शैव दर्शन, शाक्त-दर्शन से लेकर ललित कलाओं, विशेषतः, मूर्ति और चित्रकला, आयुर्वेद, नृत्यशास्त्र, भाषा-विज्ञान आदि ज्ञान के विभिन्न भारतीय साहित्य की अनेक भाषाओं-बंगला, असमिया, आदि की चर्चा भी वे यत्र-तत्र करते चलते हैं। अंग्रेजी साहित्य में तो उनकी गहरी पैठ है ही। इस प्रकार उनके निबंध अपने पाठक को एक बौद्धिक संपदा सौंपते हैं। 'रस आखेटक' निबंध में यदि एक ओर आयुर्वेद ग्रंथ 'भाव प्रकाश' का उल्लेख है तो दूसरी ओर ज्योतिष का परिचय इन पंक्तियों में मिलता है, "...ब्रह्म मुहूर्त की रचना विधाता ने 'स्वाद' के लिए नहीं गंध और रूप के लिए की है। पर रोहिणी - मृगशिरा का ब्रह्ममुहूर्त अपवाद है।" इसी निबंध में अजंता के प्रसिद्ध चित्र की चर्चा और युगल मूर्तियों में नर-पुरुष की सुंदरता का विवेचन किया गया है। 'गाथा सप्तशती', फ्रांस के कवियों के अति यथार्थवाद, 'दर्पण विश्वासी' में 'रीज़न' और 'इनट्यूशन' की मनोवैज्ञानिक व्याख्या, कवि तेरा भोर आ गया है में 'बृहदारण्यक उपनिषद् का उल्लेख आदि से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि निबंधकार अपने पाठक को किस-किस प्रकार का ज्ञान सहजता से दे डालता है।

10.3.6 भारतीय साहित्य से पाश्चात्य साहित्य तक फ़ैला दिगांत

कुबेरनाथ के निबंधों की पहुँच-रेंज-बड़ी व्यापक है। उनमें पौर्वात्य और पाश्चात्य विचारधारा का अद्भुत संगम दिखाई देता है। वे जितने अधिकार से संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के साहित्य की बात करते हैं, उतने ही अधिकार से यूनानी, रोमन और अंग्रेजी साहित्य की बात करते हैं। उनके निबंधों में इन दोनों साहित्य - धाराओं के बीच सेतु बंधन जैसा किया हुआ है। अपने निबंध के बीच-बीच में तो वे विभिन्न पाश्चात्य कवियों, चिंतकों, काव्य-शास्त्रियों आदि के उल्लेख देते चलते ही हैं, कुछ निबंधों का पूरा का पूरा कथ्य ही उस साहित्य का है। 'रस आखेटक' में 'होमर', -आत्म-कथ्य', बर्जिल पर 'सिंह-द्वार का कवि प्रेम' तथा शेक्सपियर पर कवि प्रेत ने कहा 'शेक्सपियर' तीन निबंध पूरी तरह साहित्य को ही समर्पित हैं। प्रिया नील कण्ठी एक ग्रीक प्रोषितपतिक का आत्म कथ्य' भी इसी साहित्य से सम्बन्धित है वे यथा-स्थान भारतीय और पाश्चात्य साहित्य की तुलना तरह-तरह से करते चलते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के विषय में जो यह कहा था, "मेरे निबंध 'भारतीय मन और विश्वमन' के बीच एक सामंजस्य उपस्थित करने की चेष्टा करते हैं", उसे पूरी तरह सत्य सिद्ध कर दिखाया है। तुलना करते हुए वे भारतीय साहित्य के प्रति अतिरिक्त मोह का गौरवभाव से अभिभूत नहीं है जहां जैसी स्थिति है उसे उसी रूप में कहा है 'होमर' आत्म कथ्य में वे इलियट और वाल्मीकि के सन्दर्भ में कहते हैं, "ऐसा संगुठित कथानक न तो वाल्मीकि का है और व बर्जिल का। ग्रीकों की कला सम्बन्धी धारणा में आकृति (फॉर्म) का सबसे अधिक महत्व था और फॉर्म का 'गठित' तथा 'सम-सुडौल' (सिमेट्रिकल) होना एक अनिवार्य शर्त थी।" इस प्रकार वे हमारे ज्ञान-चक्षुओं को खोलने का महत् कार्य सम्पन्न करते हैं।

10.3.7 मानवतावादी सन्देश

कुबेरनाथ राय की मानवतावादी दृष्टि का परिचय निबंध साहित्य में मिलता है। वे व्यापक लोक-कल्याणकारी दृष्टि से साहित्य-सृजन करते थे, इसीलिए उन्होंने अपने सारे साहित्य को अपने “अंतर का हा-हाकर” कहा है। यही मानवतावादी दृष्टि बार-बार उन्हें सामान्य ग्रामीण जन की ओर मोड़ती है। महुआ की मधुरिका और उससे जुड़े रस-प्रसंगों का चित्रण करते-करते उसकी दृष्टि भारत के करीब पर आ कर टिक जाती है, “जब विरही यक्ष के मेघ रामगिरि पर झुकते हैं, जब कामियों की प्रिय ऋतु पावस धरती पर उतरती है, तब हिंदुस्तान के गरीबों की मृत्यु क्षुधा का आधार होता है। अरहर की थोड़ी-सी दाल में काफी महुआ के फूल और नमक डाल कर पका लेते हैं।” निबंधकार का कवि-हृदय अपने ग्राम-प्रांतर के गरीबों की असहाय गरीबी की पीड़ा से स्थान-स्थान पर उद्वेलित होता है। इसी क्रम में इस निबंध में गांव के चमारों द्वारा बैलों के गोबर से अनपचाया अन्न निकाल कर, धो कर सुखाने और खाने का चित्रण किया गया है। ऐसे स्थल जहां कहीं भी आते हैं, निबंधकार की मानवतावादी दृष्टि का परिचय मिलता है।

10.3.8 निबंध के लालित्य में साहित्य की गम्भीर चर्चा

ललित निबंध की विधा यो कोमल स्वभाव की विधा है, उसमें लालित्य बहुत अधिक गंभीरता को आने नहीं देता है किंतु कुबेरनाथ राय ने इस सीमा का अतिक्रमण बहुत ही खूबसूरती से किया है। वे अपने ललित निबंध में ‘जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि’ की उक्ति अनुसार अपनी कल्पना से गंभीर साहित्य-चर्चा, काव्य-शास्त्र की गुत्थियों को सुलझाने या ऐसी ही कुछ गरिष्ठ साहित्यिक बातों को चर्चित करने के अवसर खोज निकालते हैं, पाठक पर बिना कोई अतिरिक्त बोझ डाले। ‘मन दर्पण’ (दर्पण विश्वासी निबंध) पर विचार करते-करते वे अपना साहित्य संबन्धी दृष्टिकोण पूरी गंभीरता से प्रस्थापित करते हैं कि उनके लिए साहित्य क्या है, “इसी से मैं मानता हूँ कि साहित्य भीड़ का दर्पण नहीं यानि भीड़ की फोटोग्राफी नहीं। पर साहित्य ‘मैं’ का भी दर्पण नहीं। साथ ही साहित्य ‘भीड़’ और ‘मैं’ से परे स्वतंत्र निजी सत्ता भी नहीं। साहित्य है इसी त्रिकोण के अन्तर्व्यापी क्रिया-सूत्र का उद्घाटन। साहित्य यथार्थ को नहीं, किसी यथार्थव्यापी एवं साथ ही यथार्थतीत मर्म को, किसी ‘सुपर रियल्टी’ को व्यक्त करता है। इब्सन, शॉ, हक्सले अपनी यथार्थ दृष्टि-भंगी के बावजूद अपने साहित्य में इसी ‘सुपर रियल्टी’ को व्यक्त करता है। इब्सन, शॉ, हक्सले अपनी यथार्थ दृष्टि-भंगी के बावजूद अपने साहित्य में इसी ‘सुपर रियल्टी’ को, इसी ‘यथार्थतीत’ से व्यक्त करते हैं।” अपने निबंधों के बीच-बीच में वे इन गंभीर चर्चाओं के लिए अवसर उपस्थित कर लेते हैं।

10.3.9 वर्तमान के ज्वलंत राजनीतिक प्रश्नों की चर्चा

कुबेरनाथ राय अपने समय के अनेक ज्वलंत राजनीतिक-प्रशासनिक प्रश्नों पर अपने व्यंग्य

बाण साध कर उन पर अपना अभिमत प्रकट करते हैं । लोकतंत्र और पुलिस-व्यवस्था आदि पर उन्होंने 'रस आखेटक' में विचार किया है। 'हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध' निबंध में निबंधकार लोकतन्त्रीय व्यवस्था और अपने देश के लोकतन्त्र पर कई तीखी टिप्पणियाँ करता है, यथा – 'हमारे देश में लोकतन्त्र है ही नहीं या बिलकुल असफल है। लोकतन्त्र यहाँ है, पर कुछ ऐसे अस्पष्ट उलझे और रंग-बिरंगे मुखौटे पहने हैं कि इसकी सच्चाई हमारे विश्वास को प्रेरणा नहीं दे पा रही है । पर जहाँ कहीं लोकतन्त्र आहत होता है वहाँ हमारा मर्म पीड़ित हो जाता है ।' कवि तेरा भोर आ गया है' निबंध में पुलिस का कार्य-व्यवस्था पर यह मारक टिप्पणी द्रष्टव्य है, "पूरे पाँच घंटे तक लूट-पाट और अग्निकांड चलता रहा, एक बड़ा मुहल्ला जला कर साफ कर दिया गया, राष्ट्रध्वज का जगह-जगह अपमान क्षेत्रीय जातियता के नाम पर किया गया । पर पुलिस मूक दर्शक बन कर खड़ी रही। मुझे जस्टिस आनन्द नारायण मुल्ला का यह कथन कि भारतीय पुलिस सर्वाधिक संगठित डाकू प्रतिष्ठान है, सत्य के पर्याप्त निकट लगता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुबेरनाथ राय के निबंध हमारे साहित्य की महत्वपूर्ण निधि है ।

10.4 सारांश

कुबेरनाथ राय के निबंधों में गम्भीर चिन्तन मनन के द्वारा कहा जा सकता है कि इनके निबंधों की मूल चेतना एवं मूल स्वर सांस्कृतिक है। पौराणिकता का आवरण डालकर वे भावुकता के स्थान पर वर्तमान यथार्थ की अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता के साथ करते हैं ।

10.5 कठिन शब्द

- | | |
|-----------------|-------------|
| 1. आत्मीयता | 2. निरीक्षण |
| 3. सूक्ष्म | 4. जागतिक |
| 5. विस्तीर्ण | 6. कुहासे |
| 7. अन्यर्व्यापी | |

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. कुबेरनाथ राय के निबंधों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

.....

.....

.....

.....

.....
.....
प्र2. निबंध की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कुबेरनाथ राय के निबंधों पर प्रकाश डालिए।
.....
.....
.....
.....
.....

प्र3. कुबेरनाथ राय के निबंधों की साहित्य श्रेणी में क्या भूमिका है, प्रकाश डालिए ।
.....
.....
.....
.....
.....

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. ललित निबन्धकार कुबेरनाथ राय – डॉ० सुरेश महेश्वरी
2. कुबेरनाथ राय के निबन्धों में ललित तत्व – डॉ० अशोक
3. कुबेरनाथ राय और उनका साहित्य – अमिता सिंह
4. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त बड़सैया
5. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्र गुप्त
6. हिन्दी निबन्ध का विकास – डॉ. ओंकार नाथ शर्मा
7. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ. हरदयाल
8. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ. ज्ञानेन्द्र वर्मा
9. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना

कुबेरनाथ राय के निबंधों की भाषा शैली

- 11.0 रूपरेखा
- 11.1 उद्देश्य
- 11.2 प्रस्तावना
- 11.3 कुबेरनाथ राय के निबंधों की भाषा-शैली
- 11.4 सारांश
- 11.5 कठिन शब्द
- 11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

11.1 उद्देश्य

- भाषा एवं शैली का अर्थ जान सकेंगे ।
- भाषा एवं शैली की निबन्ध में क्या भूमिका रहती है, यह जान सकेंगे ।
- कुबेरनाथ राय के निबंधों की भाषा शैली को समझ सकेंगे ।

11.2 प्रस्तावना

कुबेरनाथ राय के निबंधों की भाषा में लालित्य, रोचकता, पाण्डित्य, सरसता और बुद्धि वैभव दिखाई पड़ता है। उसमें अर्थ गम्भीर्य, लाक्षणिकता, आलंकारिकता, चित्रोपमता, प्रतीकात्मकता एवं

उक्ति वैचित्र्य भी विद्यमान है । भाव प्रधान स्थलों पर उसमें कोमलकान्त अलंकृत पदावली दिखाई पड़ती है तो व्यंग्य-विनोद के स्थलों पर उसमें लाक्षणिकता का समावेश हो जाता है । इनके निबंधों की शैली अत्यन्त आकर्षक एवं रोचक है। मनीषी के लिए चिन्तन-मनन की सामग्री और सामान्य व्यक्ति के लिए समसामयिक समस्याओं का चित्रण इनमें उपलब्ध है।

11.3 कुबेरनाथ राय के निबंधों की भाषा-शैली

कुबेरनाथ राय के निबंधों की भाषा-शैली उनकी चयनित विधा 'ललित निबंध' के सर्वथा उपयुक्त है। उनकी भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से परिपूर्ण है तो उसमें सामान्य बोल-चाल के शब्दों का अत्यंत सहज प्रयोग भी है। वस्तुतः भाषा अपने को स्वयं कथ्य के अनुरूप ढाल लेती है। जब कवि मन की मौज में कल्पना के घोड़े लम्बे दौड़ाता है तो वह भाषा अत्यन्त सहज है किंतु जब उसमें गंभीर विषय चर्चा, दर्शन, काव्य शास्त्र, मिथकीय विवेचन आता है तो वही गंभीर हो जाती है । जिसे हम सामान्य बोलचाल की भाषा कहते हैं, आम-फहम भाषा कहते हैं, उसमें गंभीर विषय विमर्श हो ही नहीं सकता । गंभीर विषयों पर बात करते हुए वह संस्कृत-निष्ठ भी होगी और उसकी अर्थ-संगतियाँ विशिष्ट और लाक्षणिक भी हो जायेंगी । कुबेरनाथ राय के निबंध इस कथन की कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरते हैं। उनमें सहज ही भाषा में एक ऋतु प्रवाह देखा जा सकता है। इस भाषा के सहज प्रवाह का एक उदाहरण द्रष्टव्य है, 'ईश्वर न सही, पर उसकी जगह भरने वाला लोकतन्त्र यदि इतना क्षमतावान् होता कि वह अपने में आस्था को जन्म दे सके, तो भारतीय बुद्धिजीवी आहत क्रोध की इस लाचारी को न भोगता । भारतीय बुद्धिजीवी ने द्रोणाचार्य की तरह अभी तक ईमान नहीं बेचा है और हाथों का सौदा नहीं किया है। पर वह लाचारी भोग कर दिन पर दिन अपना आत्म-क्षय कर रहा है, यह एक 'ट्रेजेडी' है। लोकतंत्र में वरण स्वातंत्र्य है। वह वरण करता है। पर संदर्भ ऐसा है कि वरण अर्थहीन हो जाता है। यहां उनकी भाषा में एक आदर्श प्रवाह और शब्द चयन में पूर्ण उन्मुक्त भाव देखा जा सकता है। यदि एक ओर उसमें संस्कृत के सरल तत्सम शब्द हैं तो दूसरी ओर 'लाचारी', 'सौदा', जैसे उर्दू शब्द भी और 'ट्रेजेडी' जैसा अंग्रेजी शब्द विद्यमान है। उसे ग्रहण करने में पाठक को कहीं कोई कठिनाई नहीं होती । यदि ध्यानपूर्वक देखें तो गंभीर से गंभीर चर्चा में भी कुबेरनाथ राय जन-सामान्य में प्रचलित शब्दावली को निस्संकोच-भाव से ग्रहण करते हैं, उसमें कहीं उर्दू के शब्द हैं, कहीं भोजपुरी बोली के तो कहीं अंग्रेजी के यथा - "सृष्टि में यदि गौर से देखा जाए तो सर्वत्र नर ही सुन्दर और गुणवान है, नारी में सृजन सामर्थ्य मात्र है और कुछ नहीं ।" यहाँ कैसे चुपके से 'गौर से देखा जाए' उर्दू का शब्द आ बैठा है, पाठक (या लेखक) को भी पता नहीं चलता कि वह किसी विदेशी शब्द को इस तत्सम शब्दावली के बीच घुसा बैठा देख रहा है।

जब कुबेरनाथ राय मन की पूरी तरंग में सामान्य से, दर्पण जैसे, विषय पर लिख रहे होते हैं तो उनके छोटे-छोटे वाक्यों का विन्यास, एक शब्द मात्र की पुनरुक्ति से कथन को एक रवानगी

और लय देने का प्रयत्न देखते ही बनता है, 'वाह रे भाई दर्पण'। तुम्हारा लोहा मान गया । तुम मेरे गुरु हो, सखा हो, सारथी हो, रण में, वन में, जले स्थले तुम्हें सदैव साथ में रखूंगा । तुम अब मेरे पॉकेट में रहोगे और मैंने हाथ बढ़ाया था कि... दर्पण ठहाका मार कर हंस पड़ा ।" इस उद्धरण में यदि एक ओर 'लोहा मान गया' जैसा मुहावरा प्रयुक्त हुआ है तो 'पॉकेट' जैसे अंग्रेजी शब्द भी। इससे ऊपर वाक्य-विन्यास अपनी सहजता और प्रवाह में अपने पाठक को बाँधता है ।

यदि कुबेरनाथ राय तत्त्व-चर्चा करते हैं तो उनकी भाषा उस समय पूर्णतः तत्सम शब्दावली परिपूर्ण तो होती है किन्तु अग्राह्य नहीं, 'वैदिक ऋषि ने जिज्ञासा के समुद्र में, ध्यान के गहरे जल में निरन्तर अपने को स्थित करके अचानक वह 'बोध' एक विद्युत प्रकाश सा सहजानुभूति (इन्ट्यूशन) द्वारा प्राप्त कर लिया होगा । यह बोध कहां से आया ? कौन दे गया ? संस्कार-प्रवाह ? ईश्वर ? इस पर मतैक्य कभी नहीं हो सकता" इस उद्धरण में एक भी शब्द विदेशी या देशज नहीं है किन्तु फिर भी यह भाषा पूर्णतः ग्राह्य बनी रहती है। प्रश्नोत्तर शैली में जो प्रश्न एक-एक शब्द के माध्यम से उठाया गया है - "संस्कार प्रवाह? परंपरा ? ईश्वर ?" यह गद्य में और विशेषतः निबंध में भाषा-शैली के स्तर पर एक बिलकुल नया प्रयोग है।

कुबेरनाथ राय की भाषा-शैली में व्यंग्य और हास्य का पुट भी प्रसंगानुसार मिलता है और ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा-शैली और उत्फुल्ल हो जाती है। 'रस आखेटक' निबंध में वे प्रोफेसरों की कूपमंडूकता उनकी अध्ययन से उपराम हो जाने की वृत्ति पर व्यंग्य करते वे कहते हैं "...इनमें पंचानवे प्रतिशत ऐसे ही हैं कि इनकी सारी बादशाहत विद्यार्थी जीवन में लिखे गए नोटों पर आश्रित है।" इनके विपरीत वे प्रोफेसर जो वास्तविक अर्थों में अपना कर्तव्य कर रहना चाहते हैं, उन्हें भी कुलपति की चाटुकारिता में जिस प्रकार जीवन जीना पड़ता है, उसका भी व्यंग्यपूर्ण चित्रण निबंधकार ने इस प्रकार किया है, उन में से जो पांच असली प्रोफेसर होंगे वे जीवन भर खून के आंसू रोएंगे और शासन रावण के उस ग्यारहवें ऊर्ध्वमुख के प्रति जो उनका कुलपति बनकर अभिषिक्त होगा, उन्हें प्रतिदिन श्लोकां और अनुष्टुप छन्दों में प्रशास्ति-गान करना होगा ।

'हे प्रधान मंत्री के सखा, मुख्यमंत्री के प्यारे गीत, हे प्रभु, तुम्हारी दशमुख के ग्यारहवें मुख जैसी मनोहर आकृति पर सरस्वती प्रेमासक्त है, लक्ष्मी उससे रात-दिन नज़र लड़ाती है और पार्वती तुम्हें प्रेम-पत्र भेजती है ...इत्यादि । कहना न होगा कि लेखक ने यहाँ कुलपति की नियुक्ति के सारे दंद-फंद और फिर बाद में उसकी कार्य-प्रणाली पर कितनी सटीक टिप्पणी इस व्यंग्यात्मक कथन में की है । व्यंग्य के साथ-साथ कुबेरनाथ राय हास्य का भी बड़ा शिष्ट प्रयोग अपनी निबंध-शैली में करते हैं । हास्य का ऐसा ही प्रफुल्ल वर्णन 'दर्पण विश्वासी' में 'इस प्रकार प्राप्त होता है, अपनी हजामत बनाने की क्रिया को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी जाती है 'तब तक मैं चेहरे पर घास सी उगी 'नूरे-खुदा' को छीलकर साफ कर चुका था और ब्लेड 'नूरे मर्द' के खेत पर सक्रिय था और कुछ ही क्षणों में बीसवीं शती के किसी कारखाने के छोटे-से मामूली शिशु, एक ब्लेड ने 'खुदा' और

‘मर्द’ दोनों की महिमा को काटकर फेंक दिया।’ लेखक ने ब्लेड-रेज़र से अपनी हज़ामत बनाने का इतना हास्यपूर्ण रूप दे दिया है।

व्यंग्य और हास्य से अलग हटकर कुबेरनाथ राय की शैली में एक और रोचक तत्व मिलता है जिसे वक्रोक्ति या कथन-भंगिमा कहा जा सकता है। बात चाहे अपने जन्म ही हो चाहे दूब जैसे छोटी-सी चीज़ का परिचय देने की, निबंधकार अपनी वक्रोक्तिपूर्ण शैली से उसे सरस बना देता है। ऐसे स्थलों पर न व्यंग्य है, न हास्य अपितु कथन-वचन-भंगिमा सहसा ही मन मोह लेती है। अपने जन्म और परिवेश को लेखक इस प्रकार व्यक्त करता है कुछ वर्ष हुए मैंने इस धरती पर घास पात की तरह जन्म लिया था बिना किसी तरह की असाधारणता का सौभाग्य मुकुट पहने मणि प्रवाल के परिवेश से आते दूर एवं उनके बीच जो गेहूँ, जौ, ज्वार-बाजरा की खेती से कहीं अधिक मन लगा कर नामंदतों, विषंदतों की खेती किया करते हैं। यो अपने हिन्दुस्तानी के हिसाब में घास-पात की तरह जन्म लेना कोई बेइज्जती की बात नहीं है। इसी प्रकार दूब घास का परिचय देते हुए लेखक सामान्य से शब्दों में बहुत बड़ी बात कह जाता है। “यह एक से एक बेहया घासों की हरीतिमा नहीं जानती। जीवन कितना हठी है और मृत्यु कितनी पराजित, लाचार और दीन!” यह कोई हिन्दुस्तानी हरीतिमा से सीखे। इन सब बेहया घासों में सबसे मामूली, सबसे पददलित और उत्पीड़ित, पर सबसे इज्जतदार है, हरी-हरी दूब।” कहना न होगा कि दूब-दूर्वा का ऐसा मानवीकरण कर कथन को तो आकर्षक बनाया ही गया है, लेखक ने अपनी भाषा-शैली को एक बिलकुल नयी धरा प्रदान कर दी है।

प्रकृति-चित्रण के संदर्भ में कुबेरनाथ राय की भाषा-शैली और भी प्रांजल, ललित और सरस हो उठती है। प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों और क्रिया-कलापों को जब मानवीकृत किया गया है। तो उनकी भाषा का सौंदर्य देखते ही बनता है, “...दिवस दैत्य-सा मुँह बना कर, जीभ निकाल कर आग फेंक रहा है। दिवस के भीतर वास करने वाले वैरागी पुरुष ने अपनी अग्नि-जटा को खोल दिया है। उसके केशों की लपटें अंतरिक्ष में उसके मुखमंडल के चारों ओर उड़ रही हैं और वह अपनी ब्रह्मचारिणी वधू पश्चिमा के साथ सृष्टि में मध्यान्हवेहला में, त्रिपुर की वेला में, अंतरिक्ष विहार कर रही है।”

इस प्रकृति-चित्रण की एक और विशेषता कुबेरनाथ राय की भाषा-शैली में प्राप्त होती है। वह है बिम्बात्मकता। पूरे दृश्य का ऐसा बिम्बांकन किया गया है कि वह दृश्यबंध अपनी पूरी छवि में पाठक मन में उतरता चला जाता है। ऐसे उदाहरण प्रत्येक निबंध में देखे जा सकते हैं। ‘कवि, तेरा भोर आ गया।’ निबंध में प्रातः काल का वर्णन निबंधकार ने ऐसी ही काव्यात्मक और बिम्बात्मक शैली में किया है, भोर के धीरे-धीरे आगे सरकने, सूरज के पल-प्रति-पल ऊपर चढ़ने के सौंदर्य को कवि इतने बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत करता है, “पांच मिनट तक लोहे और भाप की स्वर-सेना समाप्त हो जायेगी। पर दस या पन्द्रह मिनट बाद ही सारा बाग जग जाएगा और सृष्टि के स्वरों

के असंख्य इन्द्रधनुष इस अगली रात के नीलारुण केशों में उलझ जाएंगे । अंत में किरण का पहला प्रस्फुटन होगा और मोह रात्रि को काटती हुई आसमान में कबीर की कविता जैसी लालिमा दहकने लगेगी और फिर धीरे-धीरे वह किरण अपना विस्तार करके तुलसी के यश जैसी धूप बन कर धरती पर फैल जाएगी पर सुकवि के उस धूप काव्य लिखे जाने में घण्टों की देर है।” इस प्रकार के बिम्ब-विधान में निबंधकार अनुकरणात्मक शब्दावली का प्रयोग कर अपने बिम्बों को और भी जीवंत रूप दे देता है। तन्द्रा में घिरे आदमी को रेल के गुजरने का आभास कैसे होता है, इसका परिचय अनुकरणात्मक शब्दों के माध्यम से ही दिया गया है, “तभी रेलगाड़ी के चक्के का पन्द्रह मात्रावाला अनुशासित छंद” छक-छका-छक! छक-छक! छक-छक!” क्रमशः निकट आने लगता है ओर साथ ही इस क्लासिकल अनुशासित छंदोबद्ध लौह-कविता को काटता हुआ पास के शीशम-कुंजों और वाँस-वन से विविध वन पक्षियों का छंद मुक्त रोमांटिक स्वर भी उठता है।” रेलगाड़ी की स्वर-लहरी को पंद्रह मात्रा का छंद कहना और ‘छक-छक’ की ध्वनि को मूर्त करना, इतना चित्रात्मक वर्णन उपस्थित कर देता है कि भाषा के इस रूप पर मुग्ध ही हुआ जा सकता है।

इतना परिनिष्ठत गद्य लिखते हुए भी कुबेरनाथ राय अपने ग्राम-प्रांतर के भाषा संस्कार से पूरी तरह जुड़े हुए हैं। माघ मास की टंड का वर्णन गाँव-जहान में किस प्रकार किया जाता था, इसके कई उदाहरण ‘जन्मान्तर के धूम्र-सोपान’ निबंध में उपस्थित हैं। “ससुरा आठ बजे से ही सीला पड़ने लगता है।” ऐसी ही रातों में कभी-कभी बूढ़े राम नरेश मिस्त्री रजाई में दुबककर करवट लेते हुए कहते हैं : “उंगलियां बाहर निकलने पर फूटने लगती हैं। माघ की रात क्या है, अफीम है अफीम।” इस वर्णन में आगे मिस्त्री कहता है, “यही माघ रात है जब जवानी में कलेजे के भीतर बोरसी जलती थी।” ऐसे मुहावरे, ऐसी लोकोक्तियाँ कुबेरनाथ राय के संस्कृत-गर्भित गद्य को एक नयी शैली प्रदान करते हैं। ये उदाहरण उनकी लोक-जीवन में गहरी पैठ का भी परिचय देते हैं कि किस प्रकार वहाँ की रहन और सहन को वे उचित शब्द दे सके हैं । ऐसे कुछ उदाहरण –

- “माघी बेटा और माघी ईटा दोनों लाल-लाल निकलते हैं, ताज़ा और तंदरुस्त ! इन्हें माघ में ही पाथना-पथवाना चाहिए ।”
- “ससुर मोर को अंगूर खट्टे और साँप मीठे । क्या दुनिया है ! अपना-अपना सवाद !”
- “कई मुहावरों का सगुण और साक्षात् अर्थ उन्हीं की संगीत में स्पष्ट हुआ, जैसे ‘खोआ कूटना’, ‘फड़ पर चढ़ना’, ‘मामले का खरसान पर चढ़ना’ आदि। ... इसी तरह के अने सुभाषित पूरे मास-भर सुनता रहा ।”

लेखक ने इन सुभाषितों को यथावत् अपना कर अपनी भाषा-शैली को एक सहजता, सरलता और लोक से जुड़ाव के गुण प्रदान किए हैं ।

अपनी भाषा-शैली को स्वाभाविकता का रंग देने के लिए निबंधों के बीच-बीच में संवादों

की भी नियोजना की गयी है। पात्रानुकूल रचे गए इन संवादों द्वारा निबंधों में एक नाटकीयता और रस का संचार होता है। 'मृगशिरा' शीर्षक निबंध में एक घड़ी रात गए किसी भी बाग में चार-पाँच स्वर बोल रहे होंगे का वर्णन किया गया है और फिर लगभग ढाई पृष्ठों तक इन्हीं चार-पाँच स्वरों की संवाद-संरचना है, एक उदाहरण -

“देखो हो ! मैंने ग्राम-सेवा जी से बोरिंग के लिए कहा तो उन्होंने बी. डी. ओ. के यहाँ रुपया जमा करवा दिया। पर साल-भर हुआ वह सुन ही नहीं रहा है ।”

“यार, सब कमीने हैं। हमें सरकारी ग्रांट मिली तो यह कहने लगा कि रुपया नकद न लेकर अमुक कम्पनी का सामान ही लो। साला सड़ा-सा माल लूँ मैं और कमीशन बनाए ये ससुर ! ... मैंने घोर विरोध किया। अंत में बड़ा-बड़ा पेंच लगाया तो रुपया बरामद हुआ ।”

इन संवादों में शब्द-चयन की स्वभाविकता तो देखते ही बनती है जैसे - 'लकड़ पेंच लगाया', आदि संवादों को पूरी नाटकीयता का संस्पर्श दिया गया है, पूरे रंग-संकेत के साथ । कोष्ठक में बीच-बीच में ऐसे रंग-संकेत है (एक असहाय चुप्पी) ! मौन, मौन, मौन !”

निबंधकार ने पूर्ण उन्मुक्त भाव से अपनी भाषा-शैली में संस्कृत के श्लोकों, हिंदी के काव्यांशों, उर्दू के शेर, बौद्धों के चर्चा गान, 'घाघ' की उक्तियाँ सभी का उपयोग किया है उनके एक ही निबंध 'मृगशिरा' में घाघ की उक्ति से लेकर उपरिनिर्दिष्ट सभी के उद्धरण मिल जाएँगे।

सभी दृष्टियों से कुबेरनाथ राय की भाषा-शैली अत्यंत वैभवशाली और हिंदी के लिए गौरवपूर्ण है। फिर भी उन पर कभी-कभी यह दोष मंडित किया जाता रहा है कि उनकी भाषा कुछ दुरुह और अग्रह्य है। इस आक्षेप का उत्तर उन्होंने कई जगह दिया है, विशेषतः 'मराल' की भूमिका 'अपनी बात' और इसी में अपनी टिप्पणी 'अपने लेखन के बारे में ।' उन्हें यह क्षोभ था कि लोग उनकी भाषा को दुरुह क्यों बताते हैं, मेरी भाषा के बारे में लोगों की आपत्तियाँ हैं कि मैं ऐसे शब्दों का यदा-कदा प्रयोग करता हूँ जो आम आदमी या आम शिक्षित जन की जानकारी के बाहर होते हैं। मेरा निवेदन है कि ऐसे शब्द मेरे पूरे लेखन में, दो सौ से समधिक निबंधों में, दो तीनदर्जन से ज्यादा नहीं ऐसा जहाँ-जहाँ मैंने किया है, सचेत और सकारण ढंग से किया है।... दिक्कत हमारे लेखन में नहीं है। दिक्कत है नवशिक्षित की भाषागत दरिद्रता के भीतर। मेरे उद्देश्य रहा है पाठक के चित्त को एक परिमार्जित भव्यता देना और साथ ही उसकी चित्त-वृत्ति का विस्तार करना।” समय की मांग है कि हिंदी के पाठक और अध्यापक हिंदी के महाकोश से जो धीरे-धीरे विकसित हो रहा है, परिचित होने की चेष्टा करें।” कुबेरनाथ राय का यह कथन उनकी भाषा पर लगे आक्षेप का सहज ही निराकरण कर देता है। उनकी चिंता थी कि भाषा के संदर्भ में भी हिंदी का पाठक एक प्रकार की कूप मंडूकता का शिकार है। उनका कथन है, “दिक्कत यहाँ पर है हिंदी-साहित्य का विद्यार्थी बौद्धिक संस्कृति से जुड़े अन्य क्षेत्रों यथा भारतीय आयुर्वेद, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, प्राचीन

नौका-नयन व्यापकार की शब्दावली से सर्वथा अपरिचित रहता है। दूसरी ओर लोहार, सोनार, बढई, माँझी और हलवाहे की तकनीकी शब्दावली से अपने शहरी परिवेश के कारण विच्छिन्न है। फलतः हिंदी का 'महाकोश' जब अतीत में या वर्तमान के लोक-स्तर में हाथ पाँव फैलाता है तो वह अजनबी लगत में चला जाता है (मराल संग्रह का भूमिका से)। उनका दृढ़ मत था कि बहुत से पुराने शब्द हैं जो आज परिचित हो लेते हैं किन्तु उनका परिचय देना नितांत आवश्यक है उनका तो उद्देश्य ही यह था, "मैंने अपनी क्षुद्र सामर्थ्य में जो कुछ किया है वह पाइक की भाषिक क्षमता को समृद्ध करने और उसे अपनी देशी भाषिक संस्कृति से मूल-सलंगन करने की दृष्टि से ही किया है।

11.4 सारांश

कुबेरनाथ राय के इस स्पष्टीकरण और हमारे ऊपर विवेचन से यह सिद्ध है कि उनकी भाषा कठिन नहीं है अपितु वह एक विशेष संस्कारयुक्त भाषा है। वे भाषा-शैली की दृष्टि से हिंदी गद्य सर्वाधिक समर्थ लेखकों में से एक है।

11.5 कठिन शब्द

- | | |
|---------------|---------------|
| 1. मिथकीय | 2. बुद्धिजीवी |
| 3. पुनरुक्ति | 4. सहजानुभूति |
| 5. चाटुकारिता | 6. अभिषिक्त |
| 7. संस्पर्श | 8. सुभाषित |

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

- भाषा और शैली के अर्थ पर प्रकाश डालें ।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- भाषा एवं शैली का निबंध लेखन में महत्व स्थापित करें ।

पाठ्यक्रम में निर्धारित निबन्धों पर प्रश्न

- 12.0 रुपरेखा
- 12.1 उद्देश्य
- 12.2 प्रस्तावना
- 12.3 निबंधों पर निर्धारित प्रश्न
- 12.3.1 रस आखेटक
- 12.3.2 तृषा, तृषा ! अमृत वर्षा !
- 12.3.3 दर्पण विश्वासी
- 12.3.4 हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध
- 12.3.5 कवि तेरा भोर आ गया !
- 12.4 सारांश
- 12.5 कठिन शब्द
- 12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

- 12.1 उद्देश्य
- निबन्धों में निर्धारित प्रश्नों से परिचित हो सकेंगे ।

- निबन्धकार की दृष्टि को जान सकेंगे ।
- निबन्धकार की संवेदनशीलता से परिचित हो सकेंगे ।

12.2 प्रस्तावना

कुबेरनाथ का समग्र ललित निबंध साहित्य तथाकथित बहुमुखी प्रतिभा ज्ञान की विद्वता का परिचायक रहा है। इन्होंने मूल रूप से निबंध के लालित्य को ही प्रस्तुत करने की चेष्टा की । कुबेरनाथ राय एक विशिष्ट प्रकार के सांस्कृतिक चिन्तक हैं। इनके चिन्तन में साहित्य, इतिहास, दर्शन, धर्म, मिथक, मनोविज्ञान, लोक-गाथा तथा अनेक जातीय स्मृतियाँ एक साथ संश्लिष्ट रूप से विद्यमान हैं ।

12.3 निबंधों पर निर्धारित प्रश्न

12.3.1 रस आखेटक

‘रस आखेटक’ के प्रख्यात निबंधकार राय अत्यंत रसमय रूप में अपनी विशिष्ट शैली में ‘आत्म’ से प्रारम्भ कर ‘पर’ पर आते हैं । वैयक्तिक संदर्भों से देश और समाज के विभिन्न ज्वलंत प्रश्नों, ललित कलाओं-मूर्ति कला, चित्रकला, भारतीय दर्शन आदि के विविध प्रश्नों पर अपनी ऐसी प्रेरक सोच प्रस्तुत करते हैं कि पाठक के मन में वे प्रश्न देर तक एक खलबली और साथ ही एक मानसिक तृप्ति का भाव बनाए रखते हैं । कभी वे हमें अपनी परम्परा से अत्यंत गहरे रूप में जोड़ते हैं तो कभी उन्हीं सूत्रों को पकड़ कर बिल्कुल वर्तमान में ले आते हैं निबंध की जो मारक दूरी, प्रभाव क्षमता है, वह उनके निबंधों को अत्यंत सम्पूर्ण एवं ग्राह्य बना देती है। अपने बहाने से वे ‘प्रोफेसर’ पद के गुण-दोषों पर खूब उन्मुक्त रूप में सटीक टिप्पणी करते हैं। पिता ने उनसे पूछा कि वे क्या बनना चाहते हैं तो प्रथमतः उन्होंने सन्यासी बनना चाहा। पिता ने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया कि सन्यासी होने में कोई गौरव नहीं अपितु अपमान है क्योंकि वह परजीवी और भिक्षाजीवी होता है । फिर उन्हें ‘प्रोफेसर’ बनना अच्छा लगा। किन्तु इस जीवन में प्रवेश कर उन्हें प्रोफेसरों की असलियत दिखाई दी और वे उनका कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करते हैं। प्रोफेसर की कूपमंडूकता पर उनका आक्रोश है कि इनमें पंचनावें प्रतिशत ऐसे हैं जो पढ़ने, अध्ययन करने में बिल्कुल विश्वास नहीं रखते और अपना पूरा जीवन उन नोट्स के सहारे ही काट देते हैं जो उन्होंने अपने विद्यार्थी काल में लिखे थे। इसमें उनकी सहायक यह युक्ति बनती है कि मातृ भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम न हो । मातृ भाषा में शिक्षा होने से विद्यार्थियों की अपने विषय पर पकड़ होगी, वे कक्षा में प्रश्न करेंगे। ऐसे में इन प्रोफेसरों को दिक्कत आयेगी, उन्हें अपने नोट्स पुनः लिखने पड़ेंगे। जो पाँच प्रतिशत “असली प्रोफेसर होंगे वे जीवन-भर खून के आंसू रोएंगे।” पूरी विश्वविद्यालयी व्यवस्था जिस भ्रष्टता में घिरी हुई है, उसकी ओर संकेत करते हुए वे उसे रावण के दशमुखों से भी बढ़ कर मानते हैं। रावण के ग्यारहवें मुख के रूप में उनका कुलपति (वाइस चांसलर) है जो कितना ही मूढ़ मति क्यों न हो, सारा प्रोफेसर समुदाय उसके गुणगान और चापलूसी में लगा रहता है। कुबेरनाथ राय ने जब प्रोफेसर बनने की कामना की थी तो उन्हें “भारतीय प्रोफेसर के इस कुत्सित जीवन या इस अभिशप्त जीवन की कल्पना” तक नहीं थी ।

निबंधकार अपने को 'रस आखेटक' रस का शिकार करने वाला अर्थात् रस का मानते हैं। इस टोह में वे अपने ग्रामांचल, पूर्वी उत्तर प्रदेश की धरती की ओर मुड़ते हैं। ग्रीष्मावकाश के समय थोड़े दिनों के लिए ही वे वहां जा पाते हैं – इसे वे 'क्षणों का आखेट' करना कहते हैं। उन्हें अपनी मातृ-भूमि से अगाध प्रेम है, वे इस धरती पर एक निजी रस-जिसे वैराग्य रस कह सकते हैं। वे यहाँ की जलवायु, प्रकृति का रसासिक्त चित्रण प्रस्तुत कर यह तथ्य प्रस्थापित करते हैं कि 'सृष्टि' में यदि गौर से देख जाए तो सर्वत्र नर ही सुन्दर और गुणवान है। नारी में सृजन सामर्थ्य मात्र है और कुछ नहीं।" यह तथ्य एक नया और चौकाने वाला विचार देता है किन्तु निबंधकार इसे प्रकृति और चित्रकला आदि के माध्यम से सत्य सिद्ध करता है। कोयल से उदाहरण देकर वे बताते हैं कि कोयल कूकती है एक भ्रांति है, नर कोयल ही सुरीलेस्वर में गाता है और मादा कोयल केवल प्रजनन – कार्य करती है। उनका कहना है कि "मयूर, शुक, कुक्कुट, पारावत, वृषभ, मृग आदि सभी पर ही आकर्षक, सुन्दर और गुणवान होते हैं।" भारतीय शिल्प-कला आश्चर्यजनक रूप से इस तथ्य के बारे में सावधान थी। विशेषतः हिन्दू मूर्ति कला।" वे शिव-पार्वती, विष्णु-लक्ष्मी और बुद्ध-यशोधरा की मूर्तियों में बहुत सूक्ष्म दृष्टि से यह देखते हैं कि पुरुष मूर्ति नारी मूर्ति से अधिक तेजपूर्ण और मोहक है। अजंता के एक प्रसिद्ध चित्र के आधार पर भी वे इस बात की सृष्टि करते हैं कि वहाँ बुद्ध यशोधरा से अधिक सुन्दर और दीप्तियुक्त है।

आगे निबंधकार अपनी मातृ-भूमि के जलवायु पर विचार करता है कि गर्मियों में ज्येष्ठ में भी 'राते शीतल और सुखदायक होती हैं' किन्तु वह इस तथ्य की पृष्टि आयुर्वेद के ग्रंथ 'भाव-प्रकाश' तथा कवि कालिदास के ऋतु-संहार के प्रकरणों से पुष्ट करता हुआ सिद्ध करता है कि स्त्री-पुरुष-रमण के लिए यही प्रहर, ज्येष्ठ की रात्रि का यही काल प्रस्तावित किया गया था। फिर निबंधकार कवि हो उठता है मातृ-भूमि की भोर की मादकता का रसपूर्ण चित्रण करता है, इसे निबंधकार फ्रेंच कवि पीयरे इमैनयुल के संदर्भ से भी समझाता है। लेखक का ध्यान भोर के 'झटपटे' या 'झलफला' की ओर जाता है जिसमें महुआ (फल विशेष) मादकता से चूता है। महुआ बीनने के लिए जो नयी उम्र की लड़कियाँ जाती हैं। महुआ बीनने के अनेक रसपूर्ण प्रसंग लेखक हाल की 'गाथा सप्तशती' के कई वर्णनों के द्वारा बताता है। किन्तु निबंध का अंत होते-होते वह एक करुणा में भीग जाता है कि उनके ग्राम-प्रांतर में चमार अपनी गरीबी में किस प्रकार गोबर से निकाले गए अन्न को खाते हैं और उसकी गर्मी को दूर करने के लिए महुए का प्रयोग करते हैं।

12.3.2 तृषा-तृषा ! अमृत वर्षा !

कुबेरनाथ राय अपनी चिर-परिचित शैली में अपने लोक, गाँव-प्रांतर में ही रही अफीम या अहिफेन की खेती से प्रारम्भ कर सौंदर्य और प्रेम के अनेक पक्षों पर विचार कर बटिनीक पीढ़ी, बटिनीक का फ्रांस में हुए काव्यांदोलन से लेकर हिन्दी के 'अकविता' आंदोलन, निराला और टैगोर के काव्य, नयी कविता, बांग्ला कवि जीवनानंद दास, गाजीपुर की ग्राम्य-भूमि, काफका, टामसमान, कामू, सार्त्र प्रभृति कवियों की नारी-दृष्टि, धरती और नारी के सौंदर्य जैसे अनेक विषयों पर अपनी उन्मुक्त और गहन शोधक की दृष्टि तथा निबंधकार की काव्यात्मक संवेदना का परिचय दिया है। कुबेरनाथ राय का यह निबंध भी उनकी कला

के विशाल वितान का परिचय देता है, बड़ा व्यापक है कैनवेस उनका, अत्यन्त विस्तीर्ण । जिसे 'खस' या 'खसखास' कहा जाता है, उसी के पौधे से अफीम या अहिफेन बनती है । इसे पोस्त भी कहा जाता है, इसी पोस्त की खेती लेखाक के गृह जनपद गाजीपुर में होती है, 'मैं जिस जनपद से आया हूँ वह अफीम और इत्र गुलाब के लिए मशहूर है।' अंग्रेजों ने अफीम की खेती प्रारम्भ करायी थी । इसे इज्जत की खेती नहीं माना जाता था किन्तु निबंधकार का मन अफीम के फूलों, पोस्तों के फूलों के सौंदर्य पर रीझ कर उसका बड़ा सम्पूर्ण चित्रण करता है । इसे वे एक 'जहरीली खूबसूरती' मानते हैं। इसीलिए उस लोक-प्रांतर में 'खूबसूरत छोकरी के लिए रोमांटिक संदर्भ में 'यार, भीतर बड़ी मधुर है, पोस्ते का फूल है' कि अभिव्यक्ति प्रचलन में है । फिर निबंधकार इन जंगली-से फूलों के उपमापरक धर्म की व्याख्या धर्म की व्याख्या में पड़ जाता है कि किस प्रकार किसी लालिमा के कारण होठों का प्रसिद्ध उपमान है, को लेकर निबंधकार अपना अनुभव शृंगार रस के संदर्भ में अपनी चुटीली-सी शैली में करता है। वाल्मीकि द्वारा सीता और कालिदास द्वारा 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' यक्ष की प्रिया के संदर्भ में पढ़े थे किन्तु बिम्बफल के फूटने पर जो दुर्गंध फूटती है, उससे विस्मित हो लेखक अपना अनुभव व्यक्त करता है, 'खूबसूरत अधर-राग के पीछे दुर्गंध से भरा मुँह।' यह पोस्त का फूल अधिकांशतः सफेद ही होता है, कोई एकाध ही कुसुमी रंग का हो जाता है ।

फिर निबंधकार उस बीटनीक पीढ़ी पर आ जाता है जो अफीम का सेवन कर बीटनीक कविता या कहानी रचती है इस साहित्य पर अपनी व्यंग्यमी प्रखर सोच से लेखक वार करता है, ". ..यदि अफीम आधुनिक भाव - बोध का फैशनेबल संवाहन स्वीकृत हो जाती है तो साम्राज्यकारियों को चाहे वे पूरब के हों या पश्चिम के बौनी, कुरुप, नाटी और भद्दी शक्तियों की पाँचों घी में रहेंगे। इसी क्रम में वह फ्रांस के 'सुर्रियलिज्म' पर विचार करता हुआ हिंदी की नयी कविता और नयी कहानी पर आता है कि इसका सम्बन्ध बटिनिकों से नहीं अपितु वे यूरोप की 'नाराज़ पीढ़ी' से है । यहाँ नयी कविता और नयी कहानी से लेखक का तात्पर्य 'अकविता' और 'अकहानी' से है। इसे आगे चल कर पुष्ट करता हुआ लेखक कहता है" ...हिन्दी कविता 'बीट' नहीं । इसमें कुछ भाग क्रद्ध तरुणों का है, क्योंकि उनकी पत्थरबाजी के पीछे 66-67 का सामाजिक यथार्थ रहा है बीट नीक ऐयाशी नहीं निबंधकार ऐसे आंदोलनों की यह सार्थकता तो स्वीकार करता है कि इन आन्दोलनों से ही कभी-कभी बड़ी साहित्यिक प्रतिभाएँ प्रकाश में आती हैं ।

कविता के स्वस्थ विकास के लिए शृंगार रस को फिर से सहज करने की बात लेखक कहता है। उनका विचार है कि अकविता तक आते-आते "मोहभंग के नाम पर अप्राकृतिक और असहज शृंगार रस का विष सर्वत्र फैल गया" इस संदर्भ में वह निराला जी की सराहना करता है कि उन्होंने शृंगार को सहज धरातल देने का प्रयत्न आजीवन किया था । प्रकृति और नारी दोनों के ही स्वरूप से प्रभावित हो शृंगार को सहज रखा जा सकता है। उनके जनपद में गुलाब और

अफीम दोनों की खेती होती है, चुनना तो मनुष्य को ही उसमें से कि उसका सार्थक क्या है – गुलाब या अफीम !

इस पुष्प-चर्चा से होता हुआ कुबेरनाथ राय का कवि-हृदय पश्चिमी साहित्य में चित्रित नारी-सौंदर्य पर आ टिकता है। काफ़का, टामसमान, कामू, सार्त्र, आदि के नारी पात्रों की सूक्ष्मताओं का विश्लेषण निबंधकार ने इन पुष्पों की चर्चा के लिए किया है। वे आगे बताते हैं कि किस प्रकार फ्रांस की नयी कविता में नारी को गौरवपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया गया है। निबंध का अंत आते-आते कुबेरनाथ राय अपनी भाव-प्रवण शैली में यह प्रस्तावित करते हैं, 'मेरी समझ में धरती और नारी को असुन्दर और कुरूप कहने वाला मनुष्य जाति का सबसे बड़ा द्रोही है।' उनका दृढ़ विश्वास है कि सुषमा के सम्मुख ही मनुष्य, मनुष्य रहता है, अपनी आदिम अवस्था में नहीं आ पाता। इसीलिए उसका मत है, 'धरती का पुण्य उसकी सुषमा में व्यक्त है और सृष्टि का पुण्य नारी में।' इस सत्य का स्वीकार ही सच्ची मानवीयता है। साहित्य भी इसी सत्य पर आधारित होना चाहिए।

12.3.3 'दर्पण-विश्वासी' निबंध में व्यक्त दर्शन

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ते हुए लोगों ने दर्पण का महत्व अलग-अलग तरह से बताया है। दार्शनिक माया-दर्पण की बात कहते हैं, भक्त और संत हृदय-दर्पण को पवित्र और साफ रखने की बात कहते हैं। कवियों का मन-दर्पण कल्पना का भण्डार है। प्रेमी-जन नयनों के दर्पण में देखते-देखते दिन-रात गुज़ार देते हैं, बौद्ध भिक्षु और तान्त्रिक नख-दर्पण में भृत-भविष्य बांचने की बात करते हैं तो अन्य बहुत से लोग दर्पण को किसी अन्य रूप में देखते हैं। निबंधकार ने दर्पण का जो रूप देखा, वह उसे इस निबंध में अभिव्यक्ति दे रहा है।

लेखक अपने बरामदे में बैठा रास्ते की ओर पीठ करके अपनी हजामत बना रहा है, उसे तो भिन्न-भिन्न दृश्य और उनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया-सोच मिलती है, वह प्रभावी रूप में यहाँ अभिव्यक्ति पाती है। रास्ते की ओर पीठ होने से दर्पण में कभी किसी का प्रतिबिम्ब आ जाता है तो कभी किसी अन्य का। उसे देखकर लगता है कि मैं अद्भुत तिलस्म के द्वार पर खड़ा हूँ। यह "सारा अनुभव" लेखक को "उतना ही उदास, ट्रैजिक और अंत में निर्वेदमय लगा, जितना स्वर्गारोहण (महाभारत में) पर्व का पाठ।" दर्पण में छाता लगाए एक वृद्ध उसके पीछे एक कुत्ता और फिर सिर पर टोकरी रखे कुसुंभी रंग की साड़ी पहने एक नारी, इसके बाद तीन आदमी, फिर दौड़ती बकरी, तेज़ी से आता रिक्शा, मानों भीड़ का एक प्रवाह जुलूस की शक्ल में दर्पण में उभर रहा हो। यद्यपि यह दो रुपये का छोटा शीशा है पर इसके संदर्भ बदलते ही यह एक मायावी दुनिया अपने भीतर उतारे हुए या रचे हुए है। "वही बाहर के साधारण को असाधारणता का दान देता है।" देखी गयी वस्तुओं-व्यक्तियों के प्रति सोच से सारे संदर्भ ही बदल जाते हैं। लेखक मानता है कि "महिमा अकेली दर्पण की नहीं, महिमा एक त्रिकोण में जन्म लेती है और वह त्रिकोण है यह ज्ञाता गुणी दर्पण, मैं एक तन्मय भक्त और यह भीड़ का जुलूस गड्ढरिका प्रवाह।" इसी बिन्दु पर साहित्य का जन्म होता है।

लेखक की मान्यता है कि "साहित्य भीड़ का दर्पण नहीं, यानि भीड़ की फोटोग्राफी नहीं। पर साहित्य में का भी दर्पण नहीं। साथ ही साहित्य 'भीड़' और 'मैं' से परे स्वतन्त्र निजी सत्ता भी नहीं। साहित्य है इसी त्रिकोण के अन्तर्व्यापी क्रिया-सूत्र का उद्घाटन।" यहीं वे साहित्य में यथार्थ-चित्रण के स्वरूप पर विचार करते हुए इब्सन, शॉ, हक्सले जैसे लेखकों की यथार्थ-निरूपण-दृष्टि पर विचार करते हैं। यह स्थिति किस प्रकार वेद में व्यक्त विचारों से मेल खाती है, इस पर भी लेखक विचार करता है। आगे लेखक वेद-वर्णित मान्यताओं पर विचार करता हुआ 'तर्क बुद्धि' ('रीजन') तथा सहजतानुभूति (इनट्यूशन) मन की दो प्रकार की प्रक्रियाओं पर विचार करता है। वैज्ञानिक 'तर्क बुद्धि' का आश्रय लेते हैं किन्तु सच बात यह है कि आज तक जितने भी आविष्कार हुए हैं वे 'सहाजतानुभूति' के आर्शीवाद स्वरूप हैं। उनकी दृढ़ मान्यता है कि 'चाहे कला हो या विज्ञान मौलिक ज्ञान का आगमन हमें किसी बाह्य सत्ता के आर्शीवाद द्वारा मिलता है।"

इतने सारे सूत्रों में ले जाने वाले दर्पण को लेखक अब तक मात्र एक छैला प्रकृति की वस्तु मानता था किन्तु सोच के इतने द्वारों पर दस्तक देने के कारण अब वह उन्हें महायोगेश्वर श्रीकृष्ण के समान विविध रूपों में स्वरूप धारण करने वाला मायावी मानता है। इसीलिए वह कहता है, "वाह रे भाई दर्पण। तुम्हारा लोहा मान गया। तुम मेरे गुरु हो, सखा हो, सारथी हो, कण में, वन में, जले स्थले तुम्हें सदैव साथ में रखूँगा।" आगे वे कहते हैं कि यह मन रूपी दर्पण के रूप में दर्पण हमेशा मेरे साथ रहता है, प्रत्येक व्यक्ति के साथ रहता है यह मन-दर्पण सदैव जाग्रत रहता है।

12.3.4 'हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध' निबन्धा में दूब

निबन्धकार कुबेरनाथ राय का मत है कि मैं भी अन्य हिन्दुस्तानियों की तरह घास-पास के रूप में ही, अर्थात् सामान्य और विपन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ। किन्तु यह कोई हिकारत की बात नहीं, गौरव की ही बात है। दूब को लेखक ने सबसे अधिक 'बेहया, घासों में सबसे मामूली, सबसे पददलित और उत्पीड़ित, पर सबसे इज्जतदार बताया है। इस देश में कोई मांगलिक कार्य ऐसा नहीं होता जिसमें दूब (दूर्वी) और हल्दी का प्रयोग न किया गया हो वह तुलसी पत्र के साथ ही देवों के सिर पर विराजती है। इस प्रभुता और ऐश्वर्य, समृद्धि के संवर्द्धन के योग्य समझा जाता है। सौभारुग्य वृद्धि, शुभ लाभ आदि की प्रदायक यह घास पददलित भी होती है। न कोई इसे सींचता है, न कोई इसे पालता है किन्तु यह विषम से विषम परिस्थितियों में भी अपना अस्तित्व नहीं खोती। इसीलिए इसे अविनाशी कह सकते हैं। किसी चाणक्य की कोई भी युक्ति इसे सुखा या मार नहीं सकती। कुबेरनाथ राय उस भारतीय मानस पर आश्चर्य प्रकट करते हैं जो राम से लेकर घास-पास तक को पूज्य बना डालता है। इस घास में जो एक अकखड़पन है, विषम परिस्थितियों में भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने की अकड़ और आस्था है, वह आज के लोकतंत्रीय समाज में सिरे से गायब दिखायी देती है। आज हमें इस बोध की आवश्यकता है कि मंत्रियों या अन्य सत्ताधारियों की कुर्सी लोकतन्त्र का कुछ नहीं बिगाड़ सकती। किन्तु आज ऐसा साहस दिखाई दे रहा है।

“भारतीय बुद्धिजीवी कुर्सी, सोना, ताड़-खजूर को उस अकखड़ ढंग से, उस आत्मविश्वास से जो कबीर-तुलसी में है ललकार नहीं सकता। आज उसकी करनी और कथनी में बड़ा फर्क है। फिर भी औसत बुद्धिजीवी की लोकतंत्र पर आस्था कायम है। इसीलिए कविता की नयी पीढ़ी में व्यवस्थागत भ्रष्टता के प्रति एक क्रोध-भाव विद्यमान है। इसे लेखक ने ‘लाचार क्रोध’ कहा है उसका आहत क्रोध एक आम लाचारी में है पर अच्छी बात यह है कि अभी तक भारतीय बुद्धिजीवी ने अपना ईमान नहीं बेचा है। पर लाचारी भोगता हुआ दिन-प्रति-दिन आत्म-श्रय कर रहा है। इस प्रकार दूब (दूर्वा) के माध्यम से निबंधकार ने भारतीय लोकतंत्र में बुद्धिजीवी की स्थिति पर गम्भीरता से विचार किया है, अपनी ललित शैली में।

12.3.5 कवि तेरा भोर आ गया ! में व्यक्त विचार

प्रस्तुत निबंध में कुबेरनाथ राय पाँच बजे भोर-तड़के को उठकर अपनी मनोस्थिति का चित्रण कर प्रकृति और जगत के कितने ही पक्षों पर दृष्टि डालते हैं। अपनी चिर-परिचित ललित-ललाम शैली में वे भोर में दूर-पास से आती अनेक स्वर-लहरियों पर विचार करते हैं – रेलगाड़ी का ‘छक-छका-छक !’ पन्द्रह मात्रा वाला छंद सुनते हैं, इसके बाद बाग से उठती विभिन्न पक्षियों की समवेत स्वर-लहरी और इस सबके बीच सूर्य किरण का पहला प्रस्फुटन होता है तो निबंधकार गद्य में एक कविता रच डालता है, “... मोहरात्रि को काटती हुई आसमान में कबीर की कविता जैसी ललिमा दहकने लगेगी और फिर धीरे-धीरे वह पहली किरण अपना विस्तार करके तुलसी के यश जैसे धूप बन कर धरती पर फैल जाएगी।” लेखक को आश्चर्य होता है कि मनुष्य द्वारा चलायी जाने वाली रेल तो देर-सवेर कर सकती है पर प्रकृति ने पक्षियों को यह सहज-ज्ञान दिया है कि वे नित्य भोर में उसी समय अपना कलरव कर वातावरण को मधुर और शुचितापूर्ण बना देते हैं। मुर्गा उसी समय बाँग देता है। फिर आधे घण्टे बाद दूसरे बनपाखी चहचहाते हैं और सबसे बाद में उजाला फूटने पर कौवा काँव-काँव करता है। “कौआ बोलना, अंधेरे मुँह, झलफला और नीलारुण-क्षण समी काल-पुरुष की घड़ी के एक बिन्दु पर घटित होते हैं। निबंधकार का अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण है कि “जो पक्षी गाँव के भीतर चारा पर जाते हैं, वे आखिर में जगते हैं।” इस तथ्य की पुष्टि वह गौरैया, कबूतर तथा कौए से देता है। गौरैया और कबूतर कौए के बाद ही जगते हैं, पहले नहीं।

इसबे बाद मस्जिद से अजान स्वर और मंदिर से आरती-स्वरों का घोष सुनाई देने लगता है। इन स्वरों में प्रार्थना और आशीर्वाद जैसा लेखक को अनुभव होता है और वह आश्चर्य करता है राजनीति की उन भ्रष्ट चालों पर जिन्होंने इन स्वरों को इस रूप में न लेकर साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाया है। ये स्वर उसे ऐसे लगते हैं मानों मुअज्जिन और पुजारी ने अंधकार के विरुद्ध स्वरों की सेना खड़ी कर दी हो। अब अंधेरा इनके सामने रुक नहीं पायेगा, रात्रि शेष हो जायेगी। हमारे उपनिषदों में भी अंधकार से लड़ने का आधार ‘वाणी’ को ही माना गया है। ऐसे समय में सोए रहना अच्छा नहीं लगता। किन्तु इतिहास में ऐसे शासक भी हुए हैं जिन्होंने भोर होते हुए समय की यह आवाज़ नहीं सुनी और उन्हें अपनी सत्ता गँवानी पड़ी। रंगीले मुहम्मद शाह का यही हश्र हुआ, जब समय की भोर दस्तक दे रही थी, वे सुरा

और सुन्दरी के मोहपाश में पड़े हुए थे। इसलिए हमें भी समय रहते मुर्गे की बांग सुन लेनी चाहिए । हमारे कवियों – तुलसी, 'दिनकर', 'बच्चन' आदि ने "अरुणशिखा" (मुर्गे) की बाँग सुनने की बातें अपनी कविता में बारम्बार की है। लेखक और पीछे लौट कर 'रामायण', 'महाभारत' और 'गाथा सप्तशती' में कुक्कुट-स्वर के संदर्भ खोजता है।

इसके बाद निबंधकार कुक्कुट-माँस का वर्णन करता है कि देवी से कुक्कुट का सम्बन्ध होने पर भी असम में इसे अपवित्र खाद्य माना जाता है । इसे मांस-चर्चा से आगे बढ़ता हुआ निबंधकार 'सुरा'-शराब पर आता है कि किस प्रकार आयुर्वेद में इसके चार प्रकार बताए गए हैं – मैरेय, असब कोहल और सुरा। वह यह सिद्ध करना चाहता है कि भारतवर्ष में मांस और मदिरा सेवन की एक स्वस्थ परम्परा विद्यमान रही है । आधुनिक युग में भी "अनेक श्रेष्ठ हिन्दु मांस खाते थे।" विवेकानन्द और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के उदाहरण उसके सामने हैं। इसी क्रम में निबंधकार कलकत्ते की सुबह और शाम को याद करने लगता है, जिस तेज़ी से बंगाल में अंग्रेजी आ रही थी, उसे वह 'बंगरेज' ('अंगरेज' के वज़न पर) कहता है, इसी तरह मद्रास 'मदरेज' हो रहा है और पंजाब 'पजरेज'। कलकत्ते की सुबह ट्राम और मूषकों का विशेष आकर्षण लेखक को याद है। इसी प्रकार समय आगे बढ़ता है – पाँच बज कर पाँच मिनट। थाने का पाँच मिनट लेट का समय उसे पूरी पुलिस व्यवस्था की खबर लेने का अवसर देता है कि किस प्रकार इस देश की पुलिस हमेशा वारदात के मौके पर लेट ही पहुँचती है । इसलिए वह जस्टिस आनन्द नारायण मुल्ला के इस कथन से अपनी सहमति जताता है कि "भारतीय पुलिस सर्वाधिक संगठित डाकू प्रतिष्ठान है।" पुलिस राज्य और भी बदतर होता जा रहा है, यह भी लेखक की चिन्ता है। इस प्रकार इस निबंध में कवि ने भोर के अवतरण के लिए अनेक समस्याओं पर दृष्टिपात किया है।

12.4 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि कुबेरनाथ राय प्रकृति प्रेमी हैं ।

12.5 कठिन शब्द

मिथक, प्रस्थापित, मादकता, संवाहन, जनपद, तन्मय, यथार्थ, बोध, लोकतन्त्र

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1. पाठ्यक्रम में निर्धारित निबन्धों में प्रश्नों पर सूक्ष्म रूप से विचार करें ।

.....

.....

.....

.....

.....

प्र2. रस आखेटक, तृषा ! अमृत वर्षा निबन्ध की केन्द्रीय संवेदना पर प्रकाश डालिए ।

.....
.....
.....
.....
.....

प्र3. 'दुर्षण-विश्वासी' निबन्ध में व्यक्त दर्शन पर प्रकाश डालिए ।

.....
.....
.....
.....
.....

12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ / पुस्तकें

1. ललित निबन्धकार कुबेरनाथ राय – डॉ० सुरेश महेश्वरी
2. कुबेरनाथ राय के निबन्धों में ललित तत्व – डॉ० अशोक
3. कुबेरनाथ राय और उनका साहित्य – अमिता सिंह
4. हिन्दी साहित्य में निबन्ध और निबन्धकार – गंगा प्रसाद गुप्त बड़सैया
5. हिन्दी निबन्ध – गणपति चन्द्र गुप्त
6. हिन्दी निबन्ध का विकास – डॉ. ओंकार नाथ शर्मा
7. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य – डॉ. हरदयाल
8. सामाजिक हिन्दी निबन्ध – डॉ. ज्ञानेन्द्र वर्मा
9. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार – द्वारिका प्रसाद सक्सेना

.....

